अंक १४६

अप्रैल-जून २०१९

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

कहानियां

- कीर्ति दीक्षित
- दिलीप दर्श
- सुरेंद्र रघुवंशी
- डॉ. अशोक गुजराती
- डॉ. उमेश कुमार सिंह
- डॉ. अमिताभ शंकर राय चौधरी

आमने-सामने

डॉ. अमिताभ शंकर राय चौधरी

२० रुपये

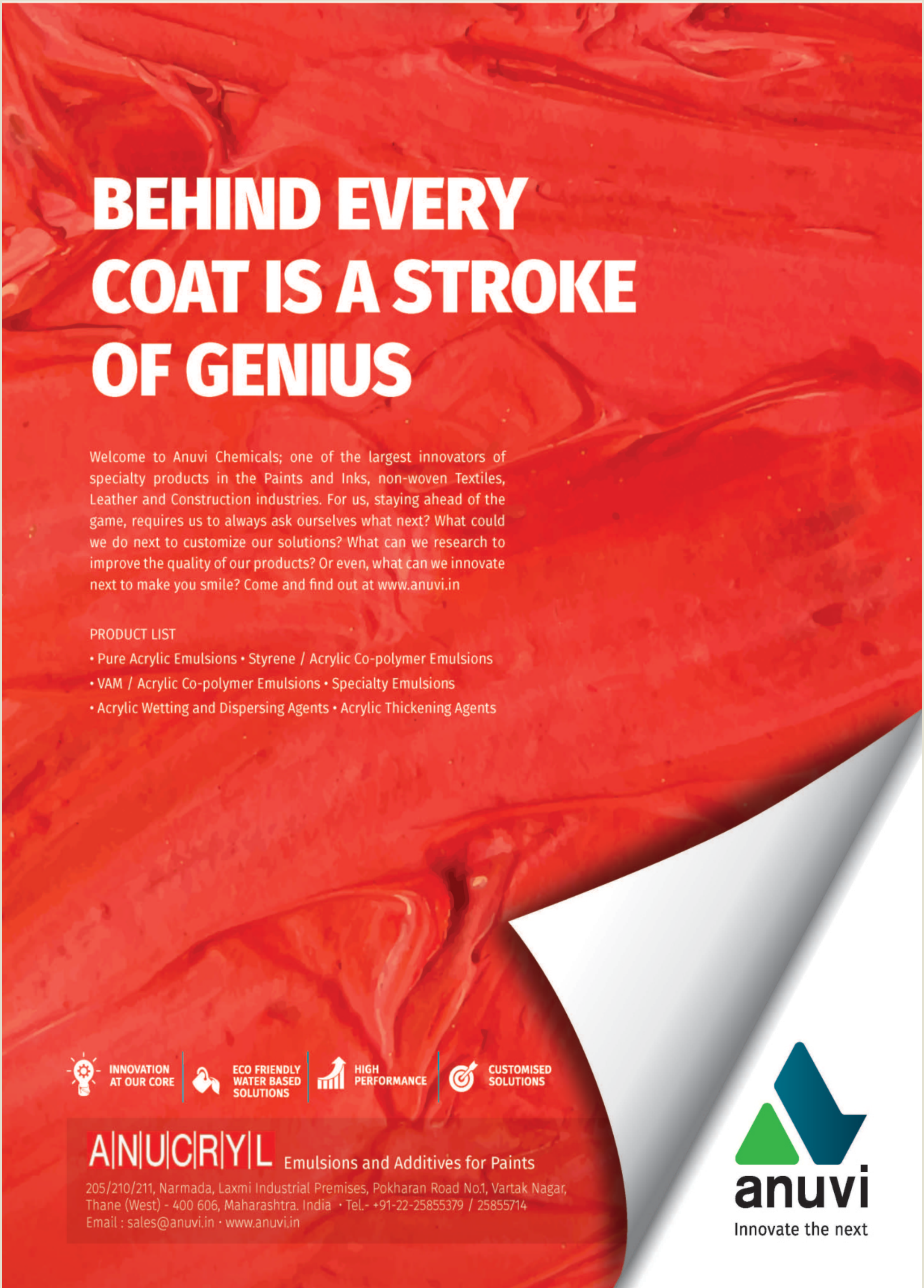
BEHIND EVERY COAT IS A STROKE OF GENIUS
Welcome to Anuvi Chemicals; one of the largest innovators of specialty products in the Paints and Inks, non-woven Textiles, Leather and Construction industries. For us, staying ahead of the game, requires us to always ask ourselves what next? What could we do next to customize our solutions? What can we research to improve the quality of our products? Or even, what can we innovate next to make you smile? Come and find out at www.anuvi.in
PRODUCT LIST
• Pure Acrylic Emulsions • Styrene / Acrylic Co-polymer Emulsions
• VAM / Acrylic Co-polymer Emulsions • Specialty Emulsions
• Acrylic Wetting and Dispersing Agents • Acrylic Thickening Agents
INNOVATION AT OUR CORE
ECO FRIENDLY WATER BASED SOLUTIONS
HIGH PERFORMANCE
CUSTOMISED SOLUTIONS
ANUCRYL Emulsions and Additives for Paints
205/210/211, Narmada, Laxmi Industrial Premises, Pokharan Road No.1, Vartak Nagar,
Thane (West) - 400 606, Maharashtra. India · Tel.- +91-22-25855379 / 25855714
Email : sales@anuvi.in · www.anuvi.in
anuvi
Innovate the next

अप्रैल-जून २०१९
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"

संपादिका
मंजुश्री

संपादन सहयोग
डॉ. राजम पिल्लै
जय प्रकाश त्रिपाठी
अशोक वशिष्ठ
अश्विनी कुमार मिश्र

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
आजीवन : ७५० रु., **त्रैवार्षिक** : २०० रु.,
वार्षिक : ७५ रु.,
कृपया सदस्यता शुल्क
मनीऑर्डर, चैक द्वारा
केवल "**कथाबिंब**" के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
मो.: ९८१९१६२६४८, ९८१९१६२९४९

e-mail : kathabimb@gmail.com
www.kathabimb.com

● **न्यूयॉर्क संपर्क** ●
नरेश मित्तल
(M) 845-304-2414
● **कैलीफ़ोर्निया संपर्क** ●
तूलिका सक्सेना
(M) 224-875-0738
नमित सक्सेना
(M) 347-514-4222

एक प्रति का मूल्य : २० रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु
२० रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४४-४८ पृष्ठ)

कहानियां

।। ७ ।। केर, बेर-सी दोस्ती - कीर्ति दीक्षित
।। ११ ।। फिर वही सड़क - दिलीप दर्श
।। १७ ।। कथा-पंडाल - सुरेंद्र रघुवंशी
।। २३ ।। बिला वजह - डॉ. अशोक गुजराती
।। २९ ।। ज़हर का प्याला - डॉ. उमेश कुमार सिंह
।। ३४ ।। सुंदरवन की अनोखी कथा - डॉ. अमिताभ शंकर राय चौधरी

लघुकथाएं

।। २८ ।। अब तस्वीर ही पिता / सेवा सदन प्रसाद
।। ४५ ।। ईमानदार / डॉ. नरेंद्र नाथ लाहा
।। ४६ ।। सिंह साहब / आनंद बिल्थरे

कविताएं / ग़ज़लें

।। १५ ।। ग़ज़ल /सुधा वर्मा
।। ३३ ।। दो गज़लें / नवीन माथुर "पंचोली"
।। ४६ ।। बबूल वाले गांव (कविता) / आनंद तिवारी पौराणिक
।। ५० ।। ग़ज़ल / अशोक "अंजुम"

स्तंभ

।। २ ।। "कुछ कही, कुछ अनकही"
।। ४ ।। लेटर बॉक्स
।। ४१ ।। "आमने-सामने" / डॉ. अमिताभ शंकर राय चौधरी
।। ४७ ।। "औरतनामा" : गायिका एम. सुब्बुलक्ष्मी / डॉ. राजम पिल्लै
।। ५१ ।। पुस्तक-समीक्षा

●**"कथाबिंब" अब फ़ेसबुक पर भी** ●
facebook.com/kathabimb
आवरण पर नामित रचनाकारों से निवेदन है कि
वे कृपया अपने नाम को "टैग" करें.

आवरण चित्र : नैनी झील (नैनीताल), ४ अप्रैल २०१९.
फ़ोटो : मंजुश्री

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

कुछ कही, कुछ अनकही

यह पत्रिका का १४६वां अंक है. शुरू में कभी भी ऐसा नहीं लगा था कि "कथाबिंब" प्रकाशन की पारी इतनी लंबी हो पायेगी. इन चालीस बरसों में अनेकानेक लोगों का सहयोग मिला है. हम सभी के आभारी हैं. पत्रिका की लोकप्रियता के बारे में जानकर कई बार चकित हुए बिना नहीं रहा जाता. अभी कुछ दिन पूर्व किसी पाठक का वाट्सअप मैसेज़ आया जिसमें उसने १९८२ में लघुकथा विशेषांक में छपी एक लघुकथा के पृष्ठ का चित्र भेजा था और जानना चाहा था कि क्या यही मूल लघुकथा है या बाद में उसमें कुछ जोड़ा गया है. प्रसन्नता जानकर तब हुई कि अभी भी पाठक ने वह विशेषांक सहेज कर रखा था. एक और प्रसंग ध्यान में आता है. दो-तीन महीने हुए एक पत्रिका विक्रेता का फ़ोन आया कि "कथाबिंब" के पहले अंक से लेकर अब तक की प्रतियां मिल सकती हैं? कारण जानना चाहा तो उसने बताया कि किसी शोध छात्र को प्रतियां चाहिए. मैंने छात्र को वेबसाइट का पता बता दिया. एक और अनुभव : इसी माह एक पाठक का फ़ोन आया कि पिछले ५-६ साल की प्रतियां चाहिए वह पैसे देने को तैयार है. कारण पूछने पर बताया कि दो-तीन सालों में सेवानिवृत्त होने वाला है, अभी से वह कुछ अच्छी पत्रिकाओं को जमा करना चाहता है. उसकी लिस्ट में "कथाबिंब" भी है!

●

इस अंक की कहानियों पर छुट-पुट : अंक की पहली कहानी *"केर बेर-सी दोस्ती"* की कहानीकारा कीर्ति दीक्षित "कथाबिंब" के पाठकों के लिए नया नाम है. प्रभाकर और शांतनु कॉलेज़ के दो दोस्त आज पड़ोसी हैं. दोनों अब सेवानिवृत्त हैं. किसी न किसी बात को लेकर रोज़ ही उनमें नोक-झोंक होती रहती है. पर मित्रता पर आंच नहीं आती. शांतनु प्रभाकर को अपनी बीमारी की बात नहीं बताता लेकिन किसी तरह प्रभाकर को यह पता लग ही जाता है तब उस पर दुख का पहाड़ टूट पड़ता है. अगली कहानी *"फिर वही सड़क"* के लेखक दिलीप अर्श भी पाठकों के लिए नया नाम है. कहानी का नायक मकुंद बस का कंडक्टर था लेकिन आज वह गल्ला व्यापारी है, उसके पास ख़ुद का ट्रैक्टर है. रात में फ़ोन पर ख़बर मिलती है कि एक्सपोर्टर्स आ रहे हैं. यदि सुबह आठ बजे तक मंडी में मकई ले आता है तो १५ रु. के भाव से सारा माल सेठ ख़रीद लेगा. सहायक जुलमी के साथ ट्रॉली में रात ही रात माल लाद कर दोनों निकल पड़ते हैं लेकिन यहीं गांव की सड़क धोखा दे देती है. ट्रॉली एक गड्ढे में फंस जाती है. तमाम मुश्किलों के बाद फंसी ट्रॉली निकल पाती है लेकिन तब तक बहुत देर हो जाती है. ग्यारह रु. में ख़रीदा माल हारकर साढ़े दस में खाली करना पड़ता है. हारे हुए खिलाड़ियों के सामने फिर वही ऊबड़-खाबड़ सड़क. तीसरी कहानी *"कथा-पंडाल"* के लेखक सुरेंद्र रघुवंशी जाने-माने कथाकार हैं. आज देश में प्रवचन करने वाले स्वामी, महात्माओं की बाढ़ आयी हुई है. आये दिन बड़े-बड़े आयोजन होते रहते हैं. आसाराम बापू, राम रहीम जेल में हैं. उनके कारनामे जग जाहिर हैं फिर भी जनता भेड़-बकरियों की तरह ऐसे साधु-महात्माओं को सुनने खिंची चली आती है.

अगली कहानी *"बिला-वजह"* के लेखक डॉ. अशोक गुजराती को "कथाबिंब" के पाठक पहले पढ़ चुके हैं. यह भी दो दोस्तों की कहानी है जिनके मध्य दूर का रिश्ता भी है. विशद को रात में भाई का फ़ोन आया कि आलोक नहीं रहा. विशद को आलोक कभी पसंद नहीं आया. दोनों ने एक ही कॉलेज़ में एडमीशन लिया था. एक ही कमरे में साथ रहे लेकिन आलोक हमेशा ही उल्टे-सीधे काम करता था. नकल करना, चोरी करना उसके लिए बड़ा आसान था. ऐसा नहीं था उसे कोई मज़बूरी थी. बस एक शौक़ जैसा कुछ था. शायद यह सब वह बिला-वज़ह करता था.

अंक की पांचवी कहानी *"ज़हर का प्याला"* के लेखक डॉ. उमेश कुमार सिंह भोपाल निवासी हैं. आपने मध्य प्रदेश प्रशासन के अनेक पदों को सुशोभित किया है. साहित्य अकादमी और संस्कृति विभाग के आप निदेशक भी रहे हैं. ज़हर का प्याला कहानी हमें प्रताप वंश के सूर्य महल के इतिहास का एक आइना दिखाती है. सूर्य की सुनहरी किरणों से बाहर का दृश्य तो आलोकित होता है किंतु चार-दीवारियों के अंदर पलती इच्छाओं को कभी आलोक नहीं मिल पाता. अंतिम कहानी *"सुंदर वन की अनूठी कथा"* के लेखक डॉ. अमिताभ शंकर राय चौधरी पेशे से डॉक्टर हैं. शीर्षक के अनुरूप ही यह एक अनूठी कहानी है. बंगाल टाइगर का घर है सुंदर वन. जंगल इतना घना कि एक बार आदमी रास्ता भूल जाये तो बाहर आना मुश्किल. फिर भी काफ़ी बड़ी जनसंख्या का भरण-पोषण करता है यह वन. ग़रीब सिराजुल विद्याधरी नदी पार कर मधुमक्खियों के छत्तों से शहद निकाल कर जीवन-यापन करता है. इसके अलावा भी जाड़े में हर पूर्णिमा और अमावस के समय जब शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष के अंत तक, महीने में दो बार हज़ारों अलीव रिडली कछुए अंडे देने के लिए सागर से निकल कर बलुई तट पर आते हैं तो बड़े-बड़े गड्ढे बना कर कछुओं को पकड़ लिया जाता है और बोरों में भर कर कोलकाता के बाज़ार के दलालों को बेचते हैं. ऐसे ही एक बड़े गड्ढे में जो सिराजुल ने बनाया था एक बाघिन गिर गयी. यहीं से कहानी एक अनूठा मोड़ लेती है.

●

२०१९ के लोकसभा चुनावों के परिणाम कई मानों में ऐतिहासिक हैं. २०१४ में ३० सालों बाद केंद्र में पूर्ण बहुमत वाली भाजपा सरकार आयी थी. पुन: पांच साल बाद जनता ने भरोसा जताया और भाजपा को अतिरिक्त जनादेश देकर देश को चलाने की ज़िम्मेदारी सौंपी है. भाजपा को ३०३ सीटें मिलीं और एनडीए को ३५३ सीटें. ऐसा कैसे संभव हुआ, भिन्न-भिन्न राजनीतिक विश्लेषक अपने अलग-अलग तर्क देने में जुटे हुए हैं. सातवें चरण का मतदान ख़तम होने के कुछ ही घंटों में टीवी चैनलों पर एक्ज़िट पोल के अनुमान

दिखाये जाने लगे थे. शायद कुछ ९ चैनलों ने सर्वेक्षण करवाये थे और यदि एकाध चैनल को छोड़ दें तो सभी के एक्ज़िट पोल के अनुमानित रिज़ल्ट काफ़ी मिलते-जुलते थे. अभी गिनती शुरू होने और अंतिम परिणाम आने में एक सप्ताह का समय बाक़ी था. ये अनुमान इतने अप्रत्याशित थे कि किसी के लिए भी इन पर किंचित मात्र भरोसा करना असंभव था. कुछ लोगों का तो यहां तक कहना था कि मोदी जी का दोबारा प्रधानमंत्री बनना कठिन है. हां संभव है कि भाजपा सबसे बड़ी पार्टी बन कर उभरे और मोदी के स्थान पर भाजपा किसी और को नामज़द करे. श्री नितिन गडकरी का नाम पर भी मीडिया अटकलें लगा रहा था. किंतु भाजपा अध्यक्ष अमित शाह लगातार घोषणा कर रहे थे कि सीटों की संख्या ३०० के ऊपर होगी. इसी तरह योगी भी विश्वास दिला रहे थे उत्तर प्रदेश में सीटों की संख्या ७० के आसपास होगी. कॉन्ग्रेस ने "मास्टर स्ट्रोक" के रूप में प्रियंका गांधी को पूर्वी उत्तर प्रदेश का प्रभारी बनाया. परिणाम, रायबरेली की सोनिया गांधी की मात्र एक सीट आयी, वह भी क्योंकि बसपा-सपा गठबंधन ने कोई उम्मीदवार खड़ा नहीं किया था. स्मृति इरानी के हाथों अमेठी में युवराज राहुल गांधी को हार का सामना करना पड़ा. अगर राहुल बाबा ने केरल के ४०% मुस्लिम बहुल क्षेत्र से पर्चा न भरा तो क्या परिणाम होता इसकी कल्पना करना मुश्किल नहीं है. कॉन्ग्रेस का "मास्टर स्ट्रोक" काम नहीं आया लेकिन भोपाल से कॉन्ग्रेस के कद्दावर नेता के विरोध में साध्वी प्रज्ञा सिंह ने बाजी मार ली.

कई प्रांतों में कॉन्ग्रेस स्थानीय दलों के साथ गठबंधन करना चाहती थी पर कइयों ने घास ही नहीं डाली. केजरीवाल ने काफ़ी कोशिश की कि कॉन्ग्रेस से गठबंधन हो जाये पर शीला दीक्षित और कुछ लोगों के विरोध के कारण ऐसा न हो सका. परिणाम, दिल्ली में दोनों पार्टियों का खाता नहीं खुला. मायावती को पक्का भरोसा था कि बसपा और समाजवादी के वोट मिलकर उत्तर प्रदेश में भाजपा को बुआ-भतीजे का गठबंधन हरा देगा. पर जोड़-तोड़ के गणित की अपेक्षा मोदी की कैमिस्ट्री ने काम किया. उत्तर प्रदेश के ८-९ % मुसलमानों ने भी भाजपा को वोट दिया. यही कारण है कि भाजपा को उत्तर प्रदेश में ६२ सीटें मिलीं. इस बार भी २०१४ की तरह जनता ने जात-पात को पूरी तरह नज़रअंदाज कर दिया. कॉन्ग्रेस और विपक्ष के अन्य दलों का पूरा प्रचार नकारात्मक था. राफ़ेल-राफ़ेल का शोर मचाने या चौकीदार चोर है चिल्लाने से फ़ायदे के स्थान पर कॉन्ग्रेस को नुकसान अधिक हुआ. "चौकीदार चोर है" के जबाव में मोदी ने पलटवार करके "मैं भी चौकीदार" नारा प्रचारित किया. दोनों ओर से लगातार रैलियां की जा रही थीं. मोदी हर रैली में सरकार द्वारा किये गये विकास के कार्यों का बखान करते थे. गांव-क़स्बों में रहने वाली देश की बहुसंख्य जनसंख्या के एक बड़े वर्ग को पिछले पांच सालों में काफ़ी सुविधाएं मुहैय्या करायी गयी हैं. "मोदी है तो मुमकिन है" नारे ने भी लोगों के मनों को छुआ. कश्मीर में फुलवामा में हुए आतंकी हमले के बाद मिलेट्री को दी खुली छूट ने और बाद में हुए बालाकोट पर हुए "सर्जिकल स्ट्राइक" ने भी मोदी का ग्राफ़ कई गुना बढ़ा दिया. और पाकिस्तान से अभिनंदन की एक दिन के अंदर वापसी ने देश वासियों का मनोबल आकाश छूने लगा. जबकि विपक्ष सबूत मांगने और मरने वाले आतंकियों की गिनती में ही उलझा रहा. यह स्वतंत्र भारत का इतिहास बताता कि जब-जब पाकिस्तान से लड़ाई के बाद हुए चुनावों में, चाहे वह बंगला देश का युद्ध हो या कारगिल की लड़ाई, सत्ताधारी पक्ष को लाभ मिला है. भारत का जनमानस मूलतः भावुक है. बालाकोट में हुए "सर्जिकल स्ट्राइक" ने भी चुनाव में भाजपा को अप्रत्यक्ष रूप से फ़ायदा पहुंचाया. २०१४ की मोदी की आंधी ने २०१९ में एक सुनामी का रूप ले लिया. देश के २९ राज्यों में से १८ में कॉन्ग्रेस का खाता ही नहीं खुला. कहा जा सकता है कि पहले की अपेक्षा कॉन्ग्रेस को ८ सीटें अधिक मिली हैं किंतु इस बार भी यह आंकड़ा संसद की कुल सीटों के १० प्रतिशत से कम ही रह गया. इस कारण से अगले पांच सालों तक भी विपक्ष के नेता का पद खाली ही रहेगा. कुछ पार्टियों के जीतने वाले सांसदों की संख्या इतनी कम है कि उनका राष्ट्रीय पार्टी का दर्जा ख़तम हो सकता है, चुनाव चिन्ह भी छिन सकता है!

हार के बाद कुछ दलों के नेताओं ने दबी-छुपी आवाज़ में ईवीएम पर ठीकरा फोड़ने की कोशिश की. चुनाव आयोग ने कई बार यह बताया है कि ईवीएम एक "स्टैंड अलोन" मशीन है, यानी एक बार बंद किये जाने के बाद, बाहर से किसी भी प्रकार, उससे संपर्क नहीं किया जा सकता, किसी तरह की छेड़-छाड़ नहीं की जा सकती. सात चरणों में संपन्न चुनाव एक मिलेट्री ऑपरेशन से कम नहीं था. कश्मीर से कन्याकुमारी और गुजरात से अरुणाचलम तक, देश के ९० करोड़ मतदाताओं में से ६७ प्रतिशत ने मतदान में भाग लिया. देश के विस्तृत मतदान केंद्रों में ईवीएम मशीनों को पहुंचाना, लाखों लोगों को प्रशिक्षित करना, चुनाव के पश्चात गणना तक मशीनों की सुरक्षा करना और मतगणना के दिन चौबीस घंटे के अंदर परिणाम घोषित करना इसे अवश्य ही एक महती कार्य मानना होगा. अरुणाचलम प्रदेश में, मलोगाम के एक चुनाव केंद्र में एक वोटर के वोट के लिए ६ अधिकारी, ६ मील, दुर्गम इलाके में दो दिन चल कर पहुंचे. पूरा चुनाव निष्पक्षता से संपन्न हुआ. निश्चित ही चुनाव आयोग के सदस्य और सभी सहयोगी बधाई के पात्र हैं.

कॉन्ग्रेस की हार के बाद राहुल गांधी ने अध्यक्ष पद से इस्तीफ़ा दे दिया है. पर स्थिति यह है कि मैं तो कंबल उतार कर फेंकना चाहता हूं किंतु कंबल उतर ही नहीं रहा. कुछ लोग उन्हें मनाने में लगे हैं. किंतु मेरे विचार से युवराज को अपने गुरू सैम पित्रोदा की बात मान लेना चाहिए, "जो हुआ, सो हुआ." अध्यक्ष-पद एक बार हाथ से गया तो वापस नहीं मिलने वाला. इधर कुंआ, उधर खाई!

•

लोकतंत्र में एक स्वस्थ विपक्ष होना परमावश्यक है जो सत्ता पक्ष पर अंकुश रखे. यही काम बुद्धिजीवियों और साहित्यकारों का भी होना चाहिए. केवल अपनी "आइडियोलॉजी" के चलते प्रतिपक्ष हमेशा विरोध के लिए विरोध करता रहे, यह उचित नहीं. सदैव देशहित सर्वोपरि होना चाहिए.

अरविंद

लेटर-बॉक्स

▸▸ 'कथाबिंब' का जन-मार्च '१९ अंक प्राप्त हुआ. अंक की सबसे बेहतरीन लघुकथा 'मज़हब' लेखक पारस कुंज, वक़्त की नजाकत को समझने में सारगर्भित लगी. इस लघुकथा में लेखक ने ज़िंदगी की वास्तविक सच्चाई को उजागर करके समाज को आईना दिखाने का काम किया है.

हर मुसलमान आतंकवादी नहीं होता, पर हर मुसलमान के साथ 'आतंकवाद' का नाम जुड़ा होता है. वास्तव में सियासत ने हर मुसलमान को इस देश में एक अलग पहचान दी है और वह उसी के साथ जीने को विवश है और दंगों की आग में झुलसते रहने को भी मज़बूर है. रमजनी का यह कहना कि 'उसका आज हमारे नेताओं के यहां क़ैद है.'

'कथाबिंब' ने इस लघुकथा को पत्रिका में स्थान देकर गंगोजमन संस्कृति को पहचान दी है. यही भारत की सदियों पुरानी सभ्यता, संस्कृति और आपसी भाईचारे का प्रतीक है. यही वह संस्कृति है जहां हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख, इसाई सब मिलकर अपने लिए, अपने परिवार के लिए रोज़ी-रोटी कमाते हैं रमजनी लाल ध्वज बेचकर अपने परिवार के लिए मेहनत मशक्कत से दो रोटी कमाने में लगा है तो वह कभी ग़लत नहीं हो सकता. हालांकि आम मुसलमानों ने अपने लिए कुछ ख़ास किस्म के काम चुन लिये हैं — जैसे कसाई, कबाड़ी, गाड़ियां बेचना-ख़रीदना और पंचर बनाना, कपड़ों की दुकान चलाना. इसके बरअक्स भी कई ऐसे काम हैं जिनसे उन्हें इज़्ज़त और शोहरत मिलती है.

कितना ही अच्छा होता यदि इस देश और विदेश में भी वे इंसानियत और उससे जुड़े हुए कामों को तरजीह देते, लेकिन सियासत की रंगरेज दुनिया उन्हें 'मुसलमान' कहकर हमेशा हाशिए में डाल देती है. इसी भारत में अनेक ऐसे संत और फ़कीर हुए हैं जिन्हें मज़हब से कुछ लेना-देना नहीं. वह तो बस एक अल्लाह के बताए हुए शांतिपूर्ण व नेक-नियति के रास्ते पर चलने वाले रहे हैं. चाहे कोई ग़रीब, हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख, इसाई किसी भी कौम को मानने वाला हो उन्होंने सबकी सेवा मदद की है.

यह सिक्खों के पंचम गुरू साहेब श्री गुरू अर्जुन देव जी की महानता, सामाजिक सौहार्द्रता थी कि उन्होंने स्वर्ण मंदिर निर्माण के वक़्त पहली ईंट मुसलमान पीर 'मियां मीर' से रखवायी ताकि पूरी दुनिया को यह संदेश दिया जा सके कि स्वर्ण मंदिर के चार दरवाज़े सभी वर्णों और वर्गों के लिए खुले हैं. भारत में मेहनतकश मुसलमान को अपनी रोज़ी-रोटी से मतलब है. उसे सियासत की बांटने वाली दीवारों से और तोड़ने का काम भले ही मुस्लिम बादशाहों ने किया हो, लेकिन आम हिंदू आज भी दयावान, कृपावान और सामाजिक सामंजस्य में, एकता में विश्वास रखता है. यह अलग बात है कि सियासत ने भले ही इसे खोखला कर दबंगई का चोला पहना दिया हो. भाई पारस कुंज और संपादक अरविंद जी, संपादिका मंजुश्री एवं संपादकगण राजन पिल्लै, जयप्रकाश, अशोक वशिष्ठ, अश्विनी कुमार को बधाई.

विक्रम जनबंधु,

क्वा. नं. १७/ए, स्ट्रीट एवेन्यू बी, से-१, भिलाई नगर-४९०००१. मो.- ९७५५३ ५२४८६

▸▸ 'कथाबिंब' का १४५ वां अंक पढ़कर ऐसा लगा जैसे कि संपादकीय लेख ने 'कुछ कही-कुछ अनकही' में चिंतनशील संदर्भ को लेकर साहित्यिक, सामाजिक व राजनीतिक परिवेश को वास्तव में अपने अनुभव से परख लिया है. 'एक बार फिर चुनावी शतरंज की बिसात बिछ गयी है से लेकर, काश्मीर में निरंतर घुसपैठ ज़ारी है,' का भाव पूर्णतयः स्पष्ट है. बीच-बीच में भ्रष्टाचार व घोटालों का जिक्र सच का दर्शन करा देता है. देश प्रेम की भावना और प्रगति का आह्वान करती हुई 'कथाबिंब' जीवन पथ-प्रदर्शक ही है, ऐसा मैं मानता हूं. सभी कहानियां, लघुकथाएं, ग़ज़लें व कविताएं सरस और हृदयस्पर्शी हैं. 'आमने-सामने', 'सागर-सीपी' व 'औरतनामा' विशेष रूप से सराहनीय हैं. आवरण चित्र की अपनी स्वर्णिम छवि मनोहारी है. यह अतिशयोक्ति नहीं कि 'कथाबिंब' एक साहित्यिक उपवन है जहां शब्द-भाव-सुमन अपनी सुगंध से किसी भी सहृदय को अधिकाधिक प्रभावित करते हैं. सभी रचनाकारों, सहयोगियों

व प्रधान संपादक डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद' जी को बधाई सहित अशेष शुभकामनाएं.

विश्वंभर दयाल तिवारी

३०२, कृष्णा रेज़ीडेंसी, सेक्टर २०,
प्लाट-१३, खारघर, नवी मुंबई-४१०२१०

▶▶ 'कथाबिंब' पत्रिका अपने नाम के अनुरूप कहानियों एवं अन्य रचनाओं के माध्यम से मनोभावों को बिंब के रूप में अंकित करने और उन्हें पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का काम बख़ूबी और शिद्दत से करती आ रही है. इसकी कहानियों में शब्दों द्वारा प्रस्तुत मानवीय भावनाओं का बारीक चित्रण देखने को मिलता है जो समकालीन कहानियों के उच्च मापदंडों के अनुकूल है. निश्चित रूप से इसका श्रेय 'कथाबिंब' के कुशल संपादन को जाता है. स्थापित रचनाकारों के साथ-साथ उदीयमान रचनाकारों की रचनाओं से सजी यह पत्रिका इसीलिए आज कथा-प्रधान आवधिक पत्रिकाओं के बीच बड़े सम्मान के साथ देखी जाती है.

इस पत्रिका की एक बड़ी विशेषता इसका नियमित प्रकाशन और सारगर्भित, सामयिक तथा बेबाक संपादकीय है. अंक में शामिल कहानियों के बारे में संक्षिप्त जानकारी भी संपादकीय को सबसे पहले पढ़ने पर बाध्य करती है. जनवरी-मार्च २०१९ का संपादकीय भी इसका अपवाद नहीं है. इस अंक की सभी कहानियां, लघुकथाएं तथा अन्य रचनाएं पठनीय हैं. राजेश जैन की कहानी 'उपचार' उल्लेखनीय है जिसमें अंधविश्वास पर बड़े प्रभावी तरीक़े से चोट की गयी है. 'आमने-सामने' में अजीत श्रीवास्तव जी ने बहुत ही सीधे-सच्चे तरीक़े से अपनी बात रखी है.

इस अंक की उपलब्धि सूर्यभानु गुप्त जी से साक्षात्कार है. धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान के ज़माने से हम उन्हें पढ़ते आ रहे हैं और उनकी रचनाओं से बेहद प्रभावित होते रहे हैं. उनका यह कहना कि 'कविता असंभव को साधने की कला, शब्दों की साधना और शब्दों का तप है', सूत्र वाक्य की तरह है. सूर्यभानु गुप्त जी जैसा संवेदनशील कवि ही कह सकता है कि 'शब्दों की ज़मीन पर खड़ी कविता एक ऐसी डोर है जो पतंग की तरह उड़ाकर मुझको धरती से आकाश तक ले जाती है, कविता अंदर-बाहर दोनों ओर से खुलने वाली एक खिड़की है जो मुझे दीवार होने से बचाती है. गुप्त जी छंदबद्ध कविता के दृढ़ हिमायती रहे हैं. इसी वजह से वे प्रकांड छंदशास्त्री मेरे पिताजी स्व. श्री आर. पी. शर्मा 'महरिष' के बड़े प्रशंसक रहे. मुंबई में रहते हुए भी उन दोनों ने एक-दूसरे को प्रत्यक्षतः कभी नहीं देखा, पर फ़ोन पर बराबर संपर्क में रहे. पिताजी के निधन की सूचना के बाद उन्होंने मुझे फ़ोन कर सांत्वना दी थी और इस बात पर खेद व्यक्त किया था कि वे उनसे चाह कर भी मिल नहीं पाये. पिछले दिनों एक पुस्तक विमोचन समारोह में पहली बार उनसे मिलना हुआ. वे जिस आत्मीयता से मिले वह मेरे लिए सुखद अनुभव रहा. उन्हें इस बात का दु:ख था कि पिताजी (आर. पी. शर्मा महरिष) के काम का सही मूल्यांकन नहीं हो पाया है. सूर्यभानु गुप्त जी के इस बहुत ही सारगर्भित, विचारोत्तेजक तथा दिशा-निर्देशक साक्षात्कार के लिए श्रीमती विभा सिंह और 'कथाबिंब' का आभार.

- डॉ. रमाकांत शर्मा

४०२, श्रीराम निवास, टट्टा निवासी हॉ.सोसा.,
पेस्तम सागर रोड नं. ३, चेंबूर, मुंबई-४०००८९

▶▶ 'कथाबिंब' जन-मार्च '१९ अंक मिला. इसका संपादकीय बहुत यथार्थपरक लगा. साधुवाद स्वीकारें. सूर्यभानु गुप्त का इंटरव्यू बहुत अच्छा लगा, अभी इतना ही पढ़ पाया हूं. आपकी पत्रिका मुझे मिलती रहती है. भरसक उसकी सामग्री रुचिपूर्वक देखता-पढ़ता रहा हूं. हिंदी में और वह भी एक अहिंदी प्रदेश में विशुद्ध साहित्यिक पत्रिका इतने निर्बाध-नियमित रूप से निकालना किसी चमत्कार से कम नहीं लगता. इतना उत्साह, इतना जीवट सराहनीय है. यह एक सार्थक उपक्रम है आपका. कृतज्ञ हूं इसके लिए.

साधुवाद!

– रमेशचंद्र शाह

एम-४, निराला नगर, दुष्यंत मार्ग,
भदभदा रोड, भोपाल–४६२००३

▶▶ *'कथाबिंब' का जन-मार्च '१९ अंक मेरे हाथों में है. यूं तो सारी रचनाएं अपना अलग ही महत्व रखती हैं पर 'दूसरा राज महर्षि' और 'अधूरी कहानी' ने मुझे विशेष रूप से प्रभावित किया. तथाकथित उच्च महात्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए अनुरीता, शौर्य की भावनाओं का ख़्याल रखे बिना उस पर अपनी इच्छाओं को आरोपित ही नहीं करती बल्कि उसे कठपुतली की तरह घुमाती भी है, परिणामतः शौर्य अपना आत्मविश्वास भी खो बैठता है. यह एक मनोवैज्ञानिक कहानी है जो किसी भी माता-पिता के लिए सार्थक है. संवेदनाएं किसी उम्र, धर्म, सरहद के परे होती हैं. 'अधूरी कहानी' कुछ यही दर्शाती है. अन्य रचनाएं भी सारगर्भित हैं आपको इसके लिए धन्यवाद.*

– सुधा वर्मा
फेज़-१४, के-५०२,
सोनम गोदावरी सी. एच. लिमिटेड,
न्यू गोल्डन नेस्ट, भायंदर (पू.)–४०११०५

▶▶ *'कथाबिंब' (जनवरी-मार्च २०१९) में अजीत श्रीवास्तव व सूर्यभानु गुप्त की कई बातें हृदयस्पर्शी हैं. इनकी कई पंक्तियों को पढ़ते समय मुझे रेखांकित करनी पड़ीं. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी व नीरज जी के उल्लेख ने और महत्वपूर्ण बना दिया है. इस अंक की एक-दो कहानियों को छोड़कर बाक़ी सभी कहानियां श्रेष्ठता की सूची में रखने योग्य हैं. गोविंद उपाध्याय की कहानी इस अंक की सर्वश्रेष्ठ कहानी (धुंध छटने के बाद) है. कथा-जगत की कई पत्रिकाएं आजकल निकलती हैं. लेकिन उनमें की लंबी-लंबी उबाऊ कहानियां पढ़ने के बाद लगता है समय व्यर्थ गंवाया. लेकिन 'कथाबिंब' में छोटी कहानियां ही होती हैं पर उन्हें पढ़ने के बाद आत्मिक तोष होता है. धन्यवाद!*

–केदारनाथ 'सविता'
पुलिस चौकी रोड, लालडिग्गी,
सिंहगढ़ गली (चिकाने टोला)
मीरजापुर-२३१००१ (उ. प्र.)
मो. : ९९३५६८५०६८

फॉर्म- ४

समाचार पत्र पंजीयन केंद्रीय कानून १९५६ के आठवें नियम के अंतर्गत ''कथाबिंब'' त्रैमासिक पत्रिका से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का विवरण :

१. प्रकाशन का स्थान	: पिकॉक प्रिंट्स, बिल्डिंग नं. १ के पीछे, अंबेडकर सर्किल, पंतनगर, घाटकोपर, मुंबई-४०००७५
२. प्रकाशन की आवर्तिता	: त्रैमासिक
३. मुद्रक का नाम	: मंजुश्री (मंजु सक्सेना)
४. राष्ट्रीयता	: भारतीय
५. संपादक का नाम, राष्ट्रीयता एवं पूरा पता	: उपर्युक्त, ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई-४०००८८.
६. कुल पूंजी का एक प्रतिशत से अधिक शेयर वाले भागीदारों का नाम व पता	: स्वत्वाधिकारी - मंजुश्री (मंजु सक्सेना)

मैं, मंजुश्री घोषित करती हूं कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त सभी विवरण सत्य हैं.

(हस्ताक्षर - मंजुश्री)

केर-बेर सी दोस्ती!

कीर्ति दीक्षित

लेखिका उत्तर प्रदेश के हमीरपुर जिले की राठ तहसील की निवासी हैं. सात वर्ष विभिन्न मीडिया संस्थानों में सेवाएं देने के उपरांत वर्तमान में लेखन कार्य में सक्रिय हैं, विभिन्न पत्रिकाओं में लेख, स्तंभ, कहानियां आदि प्रकाशित होते हैं, कुछ समय पूर्व बुंदेली पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यास 'जनेऊ' प्रकाशित हो चुका है.

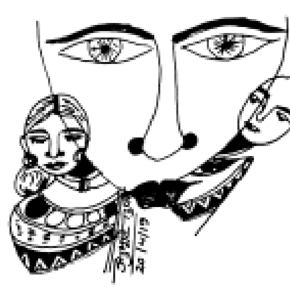

सबेरे के पांच बजे से रामचरित मानस की धुन कॉलोनी के सारे घरों की बत्तियां जला देती थी, और जो नहीं जलतीं... वो प्रभाकर सिंह और शांतनु शर्मा के झगड़े से जल जाया करतीं. ये दोनों पचास साल से पड़ोसी थे और क़रीब उतने ही समय से दोस्त भी थे. दोस्त ऐसे जैसे केर-बेर, हां... वही रहीम के दोहे वाले केर–बेर जो एक दूसरे को सह नहीं सकते और एक दूसरे के बिना रह भी नहीं सकते. दोनों को एक दूसरे से दूर ना जाना पड़े इसलिए बेटों से कह दिया था, अपने शहर को छोड़कर नहीं जायेंगे. प्रभाकर सिंह उम्र में साठ बसंत के गवाह थे, पर स्वभाव में बिलकुल जून के सूरज जैसे. अंग्रेज़ी के प्रोफ़ेसर रहे थे लेकिन धोती कुरते के अलावा कभी कुछ तन पर नहीं रखा था. अब रिटायरमेंट के बाद फ़र्क बस इतना आया था, कि हाथों में तेल पिया हुआ चमचमाता डंडा भी उनके साथ चलने लगा था, मजाल किसी की जो उनकी आंखों में क्षण भर भी झांक ले. लेकिन शांतनु शर्मा बिलकुल उलट बहते पानी से, ५८ बरस के थे पर चेहरे की चमक ऐसी कि किसी नौजवान की क्या होगी.

आज भी सुबह-सुबह प्रभाकर के टेपरिकॉर्डर पर बज रही रामचरितमास की चौपाइयों से शांतनु झल्ला कर उठे थे. अपने घर यानि 'शांतनु सदन' की बालकनी से आंखें मलते हुए, जोर से चिल्लाये —

'क्यों भाई सूरज से कंपटीशन लगाये रहता है, कभी तो उसे भी आ जाने दिया कर.'

प्रभाकर ने चेहरा घुमाया और कहा — 'मैं यह ना करूं तो यहां की सुबह ही दोपहर बाद हो, और तू तो चौथेपन में आ गया है. अब तो रामभजन में जी लगाया कर.'

शांतनु फिर बोले – 'ख़ुद तो ६० के हुए हैं, पर मोहल्ले भर को ७० का बनाने में तुले रहते हैं.'

इतने में रोल बनाकर हॉकर ने अख़बार उछाला. शांतनु अख़बार पकड़ते हुए बोले — 'आता हूं थोड़ी देर में, फिर बुढ़ापे और जवानी का मुआयना करते हैं.'

दोनों एक दूसरे को देख मुस्कुराये और अंदर चले गये.

इन दो दोस्तों की यही नोंक-झोंक सारी कॉलोनी वालों के खाली वक़्त में बहस और मज़ाक दोनों का मुद्दा हुआ करता थी. प्रभाकर और शांतनु दोस्त थे भी

या नहीं, ये साबित करने के लिए शर्तें लग जाया करतीं... पर इस बार शायद वक़्त इन दोनों की दोस्ती की परीक्षा लेने की तैयारी कर रहा था.

दस बज गये थे. हाथों में तुलसी की माला लिये, प्रभाकर बाहरी बरामदे में बैठे थे. गेट पर कोई आता दिखाई पड़ा, उन्होंने आंखों पर हाथों की छत बनाकर देखा... और आवाज़ दी — 'कौन है?'

प्रभाकर के इस सवाल का जवाब शांतनु हमेशा यह कहकर देते थे — 'ये कहलाता है बुढ़ापा! नज़र कमज़ोर... याद्दाश्त कमज़ोर.'

लेकिन आज शांतनु, चुपचाप आकर प्रभाकर के सामने वाली बांस की कुर्सी पर बैठ गये.

प्रभाकर शांतनु को देखकर हैरान थे, हमेशा ज़ीन्स... टी-शर्ट... स्पोर्ट्स शूज़... और आंखों पर काला चश्मा चढ़ाये रहने वाले शांतनु, आज धोती कुरते में उनके सामने बैठे थे.

प्रभाकर ने माथा सिकोड़ते हुए कहा — 'सब ठीक तो है, आज इस रूप में?'

शांतनु प्रभाकर की तरफ़ देखकर बोले — 'सोचा तेरी बात मान लें, कितने ही नये नवेले बनकर घूमें, लेकिन सच तो ये बुढ़ापा ही है ना, कितना आराम मिलता है इन कपड़ों में अब समझ आया?'

इतना कहते-कहते जोर-जोर से खांसने लगे. प्रभाकर तुरंत कुर्सी से उठे, उनकी पीठ सहलायी और पानी का गिलास हाथ में दिया और कहा — 'हज़ार बार कह चुका हूं टेस्ट करा ले, लेकिन एक नहीं सुननी किसी की.'

प्रभाकर अक्सर शांतनु को बुढ़ापे में खाने-पीने पर एहतियात बरतने को कहते... लेकिन शांतनु का एक ही जवाब होता था कि 'बुड्ढा मैं नहीं हूं... तू है, मैं तो अब भी बोलिवुडिया गानों पर नाच सकता हूं' लेकिन आज प्रभाकर की बात पर शांतनु बस कुछ देर उन्हें देखते रहे. फिर लंबी सांस भरकर बोले — 'हां! अब आराम करना चाहता हूं!'

शांतनु के इस जवाब ने प्रभाकर के माथे की रेखाओं को और मोटा कर दिया था. पिछले शुक्रवार ही तो शांतनु प्रभाकर से ज़िद कर रहे थे कि — 'चल ना! हम दोनों फ़िल्म देखने जायेंगे... ख़ूब मिठाई खायेंगे... सड़कों पर देर रात तक घूमेंगे?'

उस वक़्त प्रभाकर ने शांतनु का हाथ झटकते हुए सीधा-सा जवाब दिया था — 'पागल है क्या? तू जानता है ना, मुझे अमर होने का वरदान भी दे दे कोई, तब भी ये सब ना करूं.' लेकिन आज उसी शांतनु के मुंह से आराम करने की बातें... सोच की लहरों में खोये प्रभाकर के कंधे को शांतनु ने हिलाया और कहा — 'चलता हूं!'

प्रभाकर ने आंखों से सहमति दी, और उन्हें गेट तक ग़ौर से जाते हुए देखते रहे! विपरीत धाराओं-सा परिवर्तन शांतनु में उन्होंने कभी नहीं देखा था, हमेशा हंसते... नाचने... गाने वाला उनका दोस्त, आज बहुत कुछ अनकहा-सा कह गया था. लेकिन क्या? मन कुछ सुलझाने की कोशिशों में उलझ चला था.

सबेरे के पांच बज गये थे, रामधुन गूंज रही थी लेकिन आज यह आवाज़ 'शांतनु सदन' से आ रही थी. प्रभाकर आवाज़ सुनकर बाहर आये और बोले — 'आज यह सूरज किस दिशा से निकला है, ज़िंदगी में पहली बार यह चमत्कार कैसे हुआ?' शांतनु ने प्रभाकर की बात का उत्तर बस एक छोटी-सी स्माइल से दिया और भीतर चले गये. आज के इस बदलाव से प्रभाकर के मन में उपजे संदेह के बीजों में जान पड़ गयी थी. प्रभाकर सोच रहे थे, 'क्या ये वही शांतनु हैं, जो मुझे चिढ़ाने का कोई मौक़ा नहीं छोड़ते थे?' प्रभाकर की शादी में वरमाला के समय, 'मैं क्या करूं राम मुझे बुड्ढा मिल गया,' गाना बजवा दिया था. सारे जनवासे की औरतें दांतों में आंचल दबाए हंस पड़ीं थीं. लेकिन आज...

दोपहर हो चली थी, तपिश और हवाओं के बीच जोरदार झगड़ा चल रहा था. गली में सन्नाटा था... लेकिन लॉन के आम पर कुछ गौरैयां आपस में बातें कर रही थीं. शांतनु को लेकर प्रभाकर के मन के सवाल भी बाहर की तपिश से जल रहे थे. प्रभाकर अध-लेटे हुए खिड़की से बाहर एकटक देख रहे थे, जैसे शांतनु के घर की दीवारों में अपने जवाब तलाश रहे हों. प्रभाकर झटके से उठे,... अपना डंडा उठाया... कुरता पहना और निकल गये. सीधे जाकर रुके, शांतनु के गेट के सामने, कुछ देर गेट खटखटाया लेकिन कोई आया नहीं... तो ख़ुद ही भीतर चले गये. कमरे का दरवाज़ा खुला था. टेबल पर दवाइयों के पुलिंदे और कुछ कागज़ बिखरे हुए थे. शांतनु कमरे में नहीं थे. आवाज़ लगायी तो उनकी देखभाल करने वाले लड़के राजू ने बताया — 'बाबू जी बाहर गये हैं,... आते होंगे आप थोड़ी देर

इंतज़ार कर लीजिए.'

प्रभाकर ने पूछा — 'कुछ बता कर गये हैं क्या?'

राजू ने कहा — 'नहीं! बस इतना ही कहा, थोड़ी देर में आते हैं.'

प्रभाकर पलंग के बगल वाली कुर्सी सरकाकर बैठ गये, और टेबल पर पड़ी दवाइयों के पत्ते उठा कर देखने लगे, दवाइयों के पत्ते पढ़ते-पढ़ते राजू को आवाज़ दी – 'क्यों राजू! तेरे बाबू जी की तबियत ठीक नहीं क्या?' फिर टेबल पर बिखरे कागज़ पढ़े, तो उनके हाथ कांप गये. अपने चश्मे को कुरते के छोर पर रगड़कर साफ़ किया और फिर से उन कागज़ों को पढ़ने की कोशिश की, तब तक राजू भी हाथ में पानी की ट्रे लिये कमरे में आ गया. उसने कहा — 'कुछ दिनों से तबियत ज़्यादा ख़राब है, और जब पूछता हूं तो कुछ बताते नहीं, दो दिन से तो बहुत बुखार था. आज ही कह रहे थे शिव भैया के पास दिल्ली जायेंगे.'

प्रभाकर ने कुर्सी के टिकोने पर सर टिका दिया, देर तक कमरे की छत पर शांतनु के मुस्कुराते चेहरे को तलाश रहे थे.

राजू ने तीन बार पूछा — 'बाबू जी! क्या हुआ... बाबू जी!... बाबू जी!'

प्रभाकर चौंककर बोले — 'हां, नहीं नहीं... कुछ नहीं.' और उठकर चल दिये. जाते-जाते राजू को सख़्त हिदायत दी कि — 'सुनो! तुम्हारे बाबू जी आयें, तो उनसे मत कहना कि मैं आया था. मैं उनसे मिलकर बात कर लूंगा.' और अपने घर के लिए निकल गये.

प्रभाकर ने अपने कमरे में आकर, अलमारी के ऊपर रखे संदूक को मेज पर चढ़कर उतारा... और खोलकर बैठ गये, सारा गुज़रा वक़्त उस संदूक से निकलकर उनके चारों तरफ़ बिखर गया था, मोरपंखी रंग की ज़िल्द वाला एलबम निकाला, परिवार से ज़्यादा शांतनु के साथ थीं, प्रभाकर की तस्वीरें.

कॉलेज़ के दिनों में नया-नया कैमरा लिया था, शांतनु ने प्रभाकर के कितने सारे भाव उसने इन रंग-बिरंगी तस्वीरों में क़ैद किये थे, लेकिन शांतनु का हर टुकड़े में बस एक ही भाव था, मस्ती से भरा, अलहदा... एलबम के पन्ने पलटते-पलटते प्रभाकर का हाथ एक पन्ने पर ठिठक गया, इस तस्वीर में शांतनु ने कॉलेज़ में हार्टअटैक की एक्टिंग करके कैसा डरा दिया था, अपनी गोद में शांतनु को लिटाये प्रभाकर सबको डांट रहे थे, कुछ देर बाद शांतनु खिलखिला कर हंस दिये थे. पूरे दो दिन बात नहीं की थी प्रभाकर ने उनसे. प्रभाकर उस तस्वीर को छाती से लगाये देर तक अलमारी से टिके रहे... आंखों की नमी में एक ही दुआ तैर रही थी, काश आज का यह सच भी वैसा ही कोई नाटक हो. तस्वीर को सीने से लगाये हुए प्रभाकर ने संदूक में यादों के तले दबी एक गुलाबी कमीज़ बाहर निकाली... और उसे अपने गले में भींच लिया, ये वही तोहफ़ा था, जिसे शांतनु ने उनके रिटायरमेंट पर दिया था. अब आंखें बरस चली थीं, कमीज़ का गुलाबी रंग भीगकर और चटख हो गया था.

प्रभाकर रात भर अंधेरों का सफ़र खुली आंखों से देखते रहे, और ख़ुद से सैकड़ों सवाल करते रहे, कैसे उनकी नज़रें, उजाले ओढ़कर आये, अंधेरों की साज़िशें नहीं पढ़ सकीं? शांतनु की हमेशा खिलखिलाने वाली आंखें काले गड्ढों के भीतर धंसी जा रही थीं, हाथ कांपने लगे थे, सांसें भी कितनी उखड़ने लगी थीं, यह सब मैं क्यों नहीं देख सका? क्यों अपनी हर बात सबसे पहले मुझसे कहने वाले शांतनु, इतना बड़ा सच... दिल में क़ैद किये बैठे हैं.

हफ़्ते भर से शांतनु और प्रभाकर के झगड़े की आवाज़ों ने किसी के घर की बत्ती नहीं जलायी थी. शाम गहरी हो चली थी, प्रभाकर ने अपने लॉन से ही शांतनु को नीचे आने के लिए बुलाया – 'नीचे आजा, कहीं चलते हैं?' शांतनु ने कुछ ना-नुकुर करने की कोशिश की, लेकिन फिर यह सोचकर नीचे आ गये कि कहीं प्रभाकर कोई ज़्यादा सवाल ना करने लगें. आज सालों बाद प्रभाकर अपनी काली कार की ड्राइविंग सीट पर थे. शांतनु ने मुस्कुराते हुए कहा — 'क्यों भाई! आज इतने सालों बाद ड्राइविंग सीट पर... ये करिश्मा कैसे हुआ?'

प्रभाकर मुस्कुराये और गाड़ी स्टार्ट कर निकल गये.

गाड़ी चौड़ी-सी सड़क पर आगे बढ़ी जा रही थी, किनारों के पेड़ काले-काले दुशाले ओढ़े खड़े लगते थे, जैसे ही इन पर कार की रौशनी पड़ती, ऐसा लगता जैसे परछाइयां उतर कर भाग गयी हों. गाड़ी एक बड़े से गेट के सामने जाकर ठहर गयी, यह वो स्कूल था, जहां दोनों पढ़े भी थे और दोनों ने पढ़ाया भी था. दोनों गाड़ी से उतरे.

शांतनु के सवाल ने चुप्पी तोड़ी — 'इतनी रात हम यहां क्यों आये हैं?'

प्रभाकर बिना कुछ कहे स्कूल के आख़िरी छोर पर बनी बेंच की तरफ़ बढ़ गये, पीछे-पीछे शांतनु भी चल दिये, दोनों गेरुए रंग से रंगी लकड़ी की बेंच पर बैठ गये. शांतनु देर तक बेंच पर ऐसे हाथ फिराते रहे, जैसे सोते बच्चे के माथे पर पिता अपने बचपन को सहला रहा हो.

शांतनु एकाएक हंसे और बोले — 'याद है तुम्हें इस बेंच ने हमारे कितने कारनामे झेले हैं.'

प्रभाकर ने मुस्कुरा कर कहा — 'हां, मास्टर जी की मार से लेकर पहले प्यार तक, सब याद है.' एक ठहाका कुछ क्षणों के लिए इस अमावसी रात को उजाले से भर गया था. उन हंसी के ठहाकों में वो पहली आशिकी सुपर्णा भी आज सालों बाद याद आयी जो मास्टर जी के डंडों के कारण शांतनु का पहला प्यार बनते-बनते रह गयी थी. वो छज्जन की चाय की गुमटी, और उसके उधार के पैसे... अब भी इस स्कूल की दीवारों में दर्ज़ हैं. आज सब कुछ इस गेरुए रंग से निकलकर प्रभाकर और शांतनु की बाहों में आ गया था. यादें बोलते–बोलते ठहर गयीं. शांतनु आंखें ज़मीन में गड़ाकर ख़ामोश हो गये, सन्नाटे के हावी होते शोर को प्रभाकर कुछ कहकर तोड़ देना चाहते थे लेकिन दर्द को शब्द दे देना और तकलीफ़ देता है. इसलिए चुपचाप धरती से बातें करते शांतनु को देखते रहे. चाहते थे कि शांतनु अपने दर्द की कुछ बर्फ़ उनके कांधों पर पिघला दें. लेकिन ज़िंदगी ये नया रूप गढ़ के आयी थी, दोनों रोती आंखों पर हंसी के परदे डाल रहे थे, भागने की कोशिश कर रहे थे... लेकिन कब तक?

सवालों और जवाबों में उलझते, सुलझते, शांतनु के दिल्ली जाने का दिन भी आ गया. शांतनु काग़ज़ पर अपने दोस्त को अंतिम विदाई लिखने बैठे तो आंखों में बादल पहले ही घिर चले थे, क़लम बस अपने आप चल रही थी.

'प्रभाकर,

ज़िंदगी अब विदा चाहती है, कुछ दिन पहले ही रिपोर्ट आयी थी कि मुझे लास्ट स्टेज़ कैंसर है. तेरी आंखों में मेरी मौत देखने की हिम्मत नहीं, इसलिए जा रहा हूं. ज़िंदगी भर का सफ़र हमने साथ तय किया है, लेकिन अब तो अकेले ही जाना होगा. नौकरी... शादी... बच्चे ... प्रमोशन... रिटायरमेंट... सबमें तू मुझसे आगे रहा... लेकिन अब इस आख़िरी लड़ाई में मैं जीत रहा हूं. चलता हूं ऊपर मिलूंगा, पर ख़बरदार जो जल्दी आया, कुछ दिन स्वर्ग का आनंद अकेले लेना है मुझे.

- तुम्हारा शांतनु!'

लिखकर क़लम ठहर गयी, आराम कुर्सी पर टिके शांतनु चिट्ठी और ट्रेन टिकट को कभी इस हाथ में पकड़ते कभी दूसरे हाथ की उंगलियों को भींच देते, शायद ये दोनों रास्ते थे जिनमें से एक पर उनको जाना था, ज़िंदगी भर जिसके बिना नहीं रहे, उसको इस तरह छोड़कर जाना उन्हें बेचैन किये देता था. आंखों के बंद दरवाज़ों के पीछे सारी गुज़री ज़िंदगी जी उठती, शांतनु की आंखों के कोनों से सावन की बूंदें ढुलक पड़ीं. रात के बारह बज गये थे, कैब दरवाज़े पर आकर खड़ी हो गयी, चिट्ठी को मेज के कोने में दबाकर शांतनु रेलवे स्टेशन के लिए निकल गये.

शांतनु स्टेशन के बाहर खड़े, अपने शहर को आख़िरी बार निहार रहे थे. ट्रेन आने का अनाउंसमेंट भी हो चला, शांतनु स्टेशन के भीतर जाने को हुए तो पीछे से किसी ने उनका हाथ थाम लिया.

शांतनु पीछे मुड़े तो, गुलाबी कमीज़, काली जीन्स, स्पोर्ट्स शूज़ और रात में भी काला चश्मा पहने हुए छः फुटिया आदमी सामने था. शांतनु ने ऊपर से नीचे हैरान होते हुए देखा और बोले — 'प्रभाकर!'

प्रभाकर ने आंखों से काला चश्मा उतारा और कहा — हां मैं! तू मुझे अकेले छोड़ने की सोच भी कैसे सकता है?

शांतनु ने कहा — शिव...

प्रभाकर ने बीच में ही बात काटते हुए कहा — बस! अब और बहाने नहीं, मैं सब जानता हूं. तू कितना ही भाग लेकिन हमारी दोस्ती बहुत ज़िद्दी है, जहां जायेगी साथ ही जायेगी.

शांतनु प्रभाकर के कंधों से लिपट गये, प्रभाकर की गुलाबी कमीज़ पर अब सावन और भादों के बादल एक साथ बरस रहे थे.

ये दोनों दोस्त अब भी केर-बेर से हैं, रोज़ रामधुन पर झगड़ते हैं लेकिन अब बॉलीवुड के गानों पर साथ में थिरकते हैं, अस्पताल भी साथ जाते हैं, ज़ीन्स टी शर्ट में देर रात तक सड़कों पर टहलते हैं और उसी स्कूल की बेंच पर ज़िंदगी को मुस्कुराहटों की आखत देते हैं.

हरी सदन, RZ 16A/1(642),
ब्राइट कोचिंग इंस्टीट्यूट बिल्डिंग, गली नं- ३,
सागरपुर मेन, नयी दिल्ली- ११००४६.

फिर वही सड़क

दिलीप दर्श

०५ फरवरी १९७५
शिक्षा : स्नातक (प्रतिष्ठा इतिहास),
: लेखन :
पिछले पंद्रह सालों से कविता, कहानी, आलोचना-समीक्षा के क्षेत्र में मौलिक एवं समर्पित लेखन. हस्ताक्षर, पूर्वाभास, सोच विचार, आजकल, छत्तीसगढ़ मित्र और 'प्राची' में कविता, कहानी, संस्मरण एवं समीक्षा प्रकाशित. काव्य-संग्रह 'सुनो कौशिकी' प्रकाशित.
: संप्रति :
भारतीय स्टेट बैंक में कार्यरत.

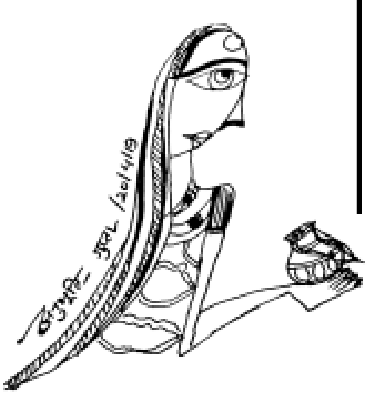

तीसरे गर्भपात के बाद स्त्री कितनी धर्मशाला हो जाती है मालूम नहीं, मगर हर तीसरी बारिश के बाद यहां की सड़क, गड्ढा या नाला हो जाती है, यह सबको मालूम है. रुपौली और नवटोलिया के बीच की सड़क एक बार फिर टूटकर गड्ढे और नाले में तब्दील हो गयी है.

पुनर्निर्माण तो दूर, इस बार गड्ढे भरने के भी आसार नज़र नहीं आ रहे. साल भर पहले ही चुनाव हुए हैं. चुनाव के ठीक पहले पुनर्निर्माण कार्य अभी शुरू ही हुआ था कि एक दिन कुछ बदमाशों ने बीच सड़क पर सिविल इंज़ीनियर को गोली मार दी. ठेकेदार, जो तत्काल बोरिया-बिस्तर समेट कर गये, आज तक वापस नहीं आये. आती रहीं सिर्फ़ ख़बरें... अपहरण, फिरौती, हत्या, जातीय गैंगवार या मज़हबी उन्माद की. पुलिस, क़ानून, प्रशासन... सब मूकदर्शक!

परंतु सड़क के टूट जाने से जीवन की गाड़ी रुकती नहीं, रुकती तब है जब गाड़ी का एक्सल ही टूट जाता है, अन्यथा यहां गड्ढे या नाले की पंकिल छाती को चीरकर गाड़ी निकालना किसी संघर्ष से कम नहीं और उनसे बचाकर निकालना, न ही किसी कला से कमतर. इस इलाके में गल्ले के कारोबार में सफल होने के लिए जो भी गुणात्मक शर्तें ज़रूरी हो सकती हैं, उनके अलावा इस संघर्ष और कला में भी साहसी और प्रवीण होना पड़ता है, ठीक मकुंदी भगत की तरह! फिर उसके पास तो गाड़ी के नाम पर ट्रैक्टर है, इसका एक्सल इतनी आसानी से नहीं टूटता.

यह सड़क पूरे इलाके के लिए जीवन-रेखा है, और मकुंदी भगत के लिए तरक्की का महामार्ग. जब वह अठारह साल का था वह इसी सड़क पर अपना टमटम चलाता था. पांच-छह साल के बाद जब बहुत सारी गाड़ियां चलने लगीं और जब टमटम को कोई पूछता न था तो उसने घोड़ा-सहित टमटम बेचकर इसी लाइन की एक बस में कंडक्टर की नौकरी कर ली.

एक दिन जब लौटती बस में डोभा के छंगुरी साह अपने परिवार सहित लालगंज जा रहे थे, मकुंदी की नज़र उसकी जवान बेटी पर पड़ी थी. उसके हंसमुख चेहरे में प्रतिबिंबित मंशा की एक झलक देखकर लड़की की नज़र जिस

तरह झुक गयी थी, उसे वह कभी भूल नहीं सका. मकुंदी ने साहजी से बस भाड़ा लेने से बिल्कुल मना कर दिया था. उसकी सदाशयता पर लट्टू होकर सद्यः कृतज्ञ साहजी ने जब कंडक्टर का नाम पूछा था तो मकुंदी ने स्वयंवर-सह-साक्षात्कार की मुद्रा में जबाव दिया था, 'मुकुंद भगत'.

अब तो वह साह जी का दामाद है, वो भी इकलौता. उसकी पत्नी ने शादी के महीने-भर बाद ही उसकी बस वाली नौकरी छुड़वा दी थी.

आज अगर मकुंदी भगत गांव में छोटा–मोटा लेकिन तेज़ी से उभरता हुआ एक सफल गल्ला-व्यापारी है तो अपनी बीवी और उस सड़क की बदौलत. यही सड़क उस गांव को कुरसेला और गुलाबबाग की बड़ी गल्ला–मंडियों से जोड़ती थी.

उस दिन तुरत फ़ोन आया कुरसेला मंडी से. मक्के का भाव आसमान पर है. दक्षिण अफ्रीका के कुछ इंपोर्टर्स का ऑर्डर पूरा करने के लिए मुंबई के कुछ एक्सपोर्टर्स बहुत दबाव में आकर मकई का अच्छा-ख़ासा दाम दे रहे हैं. इसलिए स्थानीय मंडीवाले इस अवसर को हाथ से जाने देना नहीं चाहते. उनके स्टाफ़ ने मकई पैदावार के लिए मशहूर इस इलाके के लगभग सभी छोटे–बड़े गल्ला कारोबारियों को देर रात फ़ोन कर दिया था. कल आठ बजे सुबह तक जितना माल आएगा सबको पंद्रह के भाव में ले लिया जाएगा और पैसा भी नगद और तुरंत. पूरे क्षेत्र में खलबली मच गयी.

उत्साहित मकुंदी ने सोती बीवी को उठाया. जुलमी को तुरंत फ़ोन किया और बोला, 'टोले से आठ-दस आदमी को लेकर जल्दी आओ. अभी जाना है'. जुलमी ने मोबाइल में समय देखा और थोड़ा सकपका गया, 'बाप रे! एक! इतनी रात को कौन आएगा बोरी की लोडिंग के लिए?'

फिर भी चार बजे सुबह तक ट्रेलर पर बोरियां लद गयीं. मकुंदी ने जाते–जाते मज़दूरों से कहा, 'शाम तक लौट आऊंगा, तब आना पैसे लेने.'

जुलमी गांव का कोई लेबर कांट्रैक्टर नहीं, दरअसल ट्रैक्टर ड्राइवर था. जब से खेत जोता ट्रैक्टर की नौकरी छोड़ी और रोड पर ट्रैक्टर डलायभरी का काम हाथ में लिया, लोडिंग-अनलोडिंग के लिए गांव में आठ–दस मज़दूरों से हेम–छेम स्वाभाविक रूप से हो ही गया था. ये मज़दूर समय–समय पर दिल्ली-पंजाब भी भागते रहते थे काम की तलाश में. कुछ ने जुलमी को भी बहुत बार कहा था, 'भगता की खवासी कब तक करते रहोगे भैया, चलो थोड़ा देस–दुनिया भी तो देखो, पेट–भात तो हाथ में अगर इलम है, कहीं भी चल जायेगा.'

लेकिन जुलमी, मकुंदी को छोड़ नहीं सकता. उनकी दोस्ती–यारी खानदानी है, दादा के ज़माने से ही. लोग कहते हैं मकुंदी के दादा इतना अच्छा लड़वारी खेलते थे और इतना रेघा-रेघाकर मुहर्रम के गीत गाते थे कि लोगों के रोंगटे खड़े हो जाते. धरम–इमान के लिए इतनी बड़ी शहादत का यशोगान आज तक गांव में कभी किसी ने नहीं गाया. मियांटोली से ताजिया मकुंदी के दादा के आने के बाद ही उठता. दोनों के दादा तो चले गये लेकिन दोस्ती अनवरत चलती रही.

अब तो जुलमी सोचकर भी बाहर नहीं जा सकता. घर में नयी दुल्हन छोड़कर... फिर मकुंदी जैसा अपना आदमी और कौन होगा? बिल्कुल बड़े भाईजान जैसा.

जुलमी ने पीर बाबा को सुमिरा और ट्रैक्टर की चाबी घुमायी. हेडलाईट की तेज़-लंबी रोशनी में दूर तक तहस–नहस सड़क जगमगा उठी. आगे तो और भी... जुलमी का आत्मविश्वास इस तरह कभी डगमगाया नहीं था.

'आराम से जुलमी, कोई जल्दी नहीं है. आठ बजे तक पहुंचना है कुरसेला', बांयी सीट पर बैठा मकुंदी बोल पड़ा. जुलमी ने उसकी बात अनसुनी-सी करते हुए थोड़ा चिढ़ते हुए कहा, 'आठ बजे के बाद क्या सब मकयसोड्डा थोड़े ही हो जाएगा?' मकुंदी समझ गया. जुलमी की हाल में ही शादी हुई है. ख़ासकर नयी दुल्हन को भी बस या गाड़ी पर काम करनेवाले दूल्हे से शुरू-शुरू में बड़ी चिढ़ होती है. रात को भी कभी-कभी उठकर जाना पड़ता है, मकुंदी को बख़ूबी पता है.

लेकिन जुलमी मियां को क्या मालूम बाज़ार की उछाल? उसे तो बस ट्रैक्टर के अगले और ट्रेलर के पिछले चक्के की उछाल ही पता है. खेती और बिज़नेस दोनों में समय का थोड़ा भी आगे–पीछे नहीं चलता. दिन का चैन और रातों की नींद गंवानी पड़ती है तो रूपचंद महाराज के दर्शन होते हैं. मकुंदी, जुलमी को अक्सर यह समझाता रहता था लेकिन वह उसकी बातों को इस कान से सुनकर उस कान से निकाल देता था.

उसका ध्यान अभी सड़क पर ट्रैक्टर की गति और

संतुलन पर टिका था, 'भैया, लेकिन डलायभरी में तो एक पल का भी आगे-पीछे नहीं चलता वरना सब ओम नमो सुआहा'.

मकुंदी ने पिछले कुछ महीनों से ग़ौर किया था, 'ओम' बोलते ही आजकल जुलमी असहज होकर अपनी जीभ दांत से काट लेता है, जैसे तोबा–तोबा...

मकुंदी ने थोड़ी उदासी से हामी मिलाते कहा, 'मान गये उस्ताद. संभाल के, आगे सड़क और भी ख़राब है.'

'और आगे अब ख़राब ही रहेगी, भैया,' जुलमी ने जम्हाई लेते हुए कहा. मकुंदी ने सड़क के ख़राब होने की जो दूरी–सापेक्ष सूचना दी, जुलमी ने उसे समय-सापेक्ष बनाकर, भविष्य की अनिश्चितता बढ़ा दी.

'सुभ–सुभ बोलो जुलमी' शुभ सोची मकुंदी ने थोड़ा आश्वस्त लहजे में उम्मीद जतायी.

लेकिन जुलमी सुभ–सुभ कैसे बोल सकता है! कल ही गोठ बस्ती में जागेसर नेता खुलेआम बोल रहा था, 'हमारी जनता पांव–पैदल है. गाड़ी–घोड़ावाले किलास ने हमें भेंट देकर पटना नहीं भेजा है. हमारे वर्ग की पहली ज़रूरत है सम्मान और न्याय, सड़क तो सब सरकारें बनाती हैं...' मकुंदी चिढ़कर बोल उठा, 'साला, भैंसवार से नेता तो बन गया, अक्कल को भैंस की पीठ पर ही छोड़ आया, लगता है. सड़क की भी कोई जात या किलास होती है!'

लेकिन आज मकुंदी के दादा होते तो ज़रूर कहते, 'हां होती है जात या किलास सड़क की भी. कोई पचास साल पुरानी बात आज भी लोग सुनाते हैं कि किस तरह मकुंदी के दादा को अपने माथे पर चप्पल रखकर सौ बार कान पकड़ा उठ–बैठ करना पड़ा था. अपराध सिर्फ़ इतना था कि जब ड्योढी के ज़मींदार मथुराबाबू अपने लाव–लश्कर के साथ मोहनपुर बाज़ार की ओर कूच कर रहे थे, उसी रास्ते में उनके सामने वह चप्पल पहनकर बीच सड़क पर निकल आये थे. लेकिन दादा का बदला पोता से लेकर कोई न्याय या सम्मान हासिल करने की बात करे, यह मकुंदी को कभी हजम नहीं होती.

ट्रैक्टर ने थोड़ी स्पीड पकड़ी तो ब्रह्म मुहूर्तवाली हवा की ताज़गी थोड़ी राहत पहुंचाने लगी. अचानक जुलमी का मोबाइल भों-भोंकर शर्ट की जेब में थरथराने लगा.'

भ्रामरी और कपाल–भाति योग एक साथ मोबाइल में ही संभव है, इंसान में नहीं.

'देखो जुलमी, दुलहिन का फ़ोन होगा, बोल दो, नकमुन्नी और सिल्कवाली साड़ी लेकर आ रहा हूं.' मकुंदी की बातों पर जुलमी थोड़ा सकपकाया.

नकमुन्नी और सिल्कवाली साड़ी पहले कभी ख़रीदी ही नहीं और दाम जाने बिना बीवी से... कहीं झूठ हो जाऊं, वो भी पहली बार. लेकिन जुलमी ने देखा था जब मकुंदी भैया की शादी हुई थी और नया–नया कारोबार था, कुरसे लाया पूर्णिया से लौटते वक़्त भाभी के लिए कुछ-न-कुछ ख़रीद ही लेता था और भाभी कितनी ख़ुश होकर रख लेती और अपने पति के कमाऊ होने का कितना ग़ुमान भी करती थी.

जुलमी ने पूछा, 'भैया, लेकिन इसमें लगेगा कितना?' मकुंदी ने हंसकर पीठ सहलाते कहा था, 'बुड़बक, कितना छह-सात हज़ार लगेगा? दुलहिन तो ख़ुश हो जाएगी. 'मन ही मन अपनी तनख़्वाह का हिसाब लगाते हुए जुलमी के मुंह से निकल पड़ा, 'बाप रे तो महीने का ख़र्चा कैसे चलेगा? और मुरगा-मछलीया, अंडा तो उसे हफ़्ता में दो बार चाहिए ही.'

मकुंदी को मुरगा–मछली के नाम से घिन आती है. वह दुद्धादास है. संत मत का समर्पित सत्संगी. वह जुलमी के मज़हब की सारी बातों का कायल है बस खाली ये मुर्ग–मसल्लम्...

वह जुलमी की मज़बूरी समझ रहा था. उसकी मासिक तनख़्वाह ही थी सात हज़ार मात्र.

मकुंदी को अपने दिन याद आ गये. एक समय था उसे पूरी देह बिस्तर नसीब नहीं था, साग-सत्तू खाते दिन जाते थे, मां-बाप पान-बीड़ी-खैनी की छोटी-सी दुकान लगाते थे. घर भी क्या था, दो ठठिया छप्पर का ढालनुमा वितान. आज न वे दिन हैं न ही वह घर... न ही वे मां-बाप जो कितनी बार कहते थे, 'इस बिज़निस में बहुत रिक्स है. ऊपर से अगर आमदनी लाइट में आ जाये तो जान पर आफत अलग से, कभी भी फ़ोन आ जाये कि इतना भेज देना, नहीं तो तेरी... मकुंदी के मन में ये बातें बीच-बीच में घंटी बजाती रहती हैं...' अगर आमदनी ला...

साल-भर से वह गल्ला–ढुलाई के लिए एक और ट्रैक्टर निकालना चाहता था, लेकिन, उसकी अच्छी-ख़ासी कमाई कुछ लोगों की नज़र में न चढ़ जाये, इस डर से इस ज़रूरत को टालता रहा था. यही नहीं, दो मंज़िला मकान

बनाने का विचार भी फिलहाल त्याग दिया. बड़ी चरपहिया ख़रीदने की इच्छा मन में ही रखी. पत्नी के लिए गहने गढवाने या महंगी साड़ियां ख़रीदने की मंशा भी स्थगित करता रहा. तरक्की और समृद्धि की पदचाप घर-आंगन से बाहर न पहुंचे, बहुत सोच-समझकर उसने व्यय और प्रदर्शन के सारे द्वार यथासंभव बंद रखना ही उचित समझा था. सिर्फ़ अपने दोनों बेटों के पढ़ाई-ख़र्चे में कटौती नहीं की क्योंकि गांव के असुरक्षित और बिगाड़ू माहौल से अपने बच्चों को दूर रखने के सिवाय दूसरा कोई रास्ता भी तो नहीं था.

मकुंदी को इस मुकाम पर पहुंचाने में जुलमी ने कम मदद नहीं की है. रात-बेरात, धूप–बारिश, ऊंचा-नीचा उसने कभी कुछ देखा नहीं मकुंदी के लिए. वह उसकी पीठ पर कभी भाई, कभी कुली तो कभी नौकर की तरह हमेशा खड़ा रहा है. ईमान-धरम और जुबान का पक्का है जुलमी. मकुंदी ने भी बहुत संभाला है उसको.

...लेकिन आज मकुंदी की जुबान से अपने-आप निकली थी, 'बोल दो जुलमी, नकमुन्नी और सिल्क...'

इसलिए आज वह कुरसेला में अपनी पत्नी के लिए कुछ नहीं ख़रीदेगा. उसे विश्वास है, यह जानने पर कि उसने जुलमी की बीवी के लिए नकमुन्नी और साड़ी ख़रीदकर जुलमी को दिया है तो वह ख़ुश ही होगी, नाराज़ तो बिलकुल नहीं. आख़िर कुलीन-खानदानी परिवार में शादी का यही फ़ायदा तो है. सौभाग्य से ही उस परिवार में उसकी शादी हुई, नहीं तो बस कंडक्टर को कौन पूछता था? ये सब सोचते–सोचते मकुंदी ने जुलमी से कहा था, 'पैसे की चिंता मत कर उस्ताद, बस सात बजे वहां पहुंचने तो दे, तब देखना तुम अपने सेठ का दिल. जुलमी ने कई बार देखा है मकुंदी भैया का दिल, उनके अनाज के गोदाम से कई गुना बड़ा है!

उसके सामने हेडलाइट की रोशनी एकाएक जैसे और तेज़ हो गयी... दूर से कोई नयी दुलहिन ट्रैक्टर की ओर बीच सड़क से तेज़ी से आ रही है... जुलमी जैसे एक क्षण के लिए ठिठक गया. नकमुन्नी और सिल्कवाली साड़ी चमक रही थी. जुलमी चौंका, झपकी टूटी. हल्का ब्रेक लिया, स्पीड और कम की. मकुंदी डर गया. ओवरलोड गाड़ी है. तुरंत हौसला अफ़जाई और भय के बीच संतुलन बिठाकर बोल उठा, 'देख जुलमी, अभी भोर का समय है, नींद इसी वक़्त सबसे ज़्यादा सताती है, तीन टेंगा टोला के गुरूदेव भगत का बेटा पूर्णिया से, यही आखाढ-सावन का महीना था, तड़के सुबह गांव लौट रहा था और गेड़ाबाड़ी चौक से पहले ही...आगे मकुंदी बोल नहीं पाया.

जुलमी ने आंखें फाड़कर रोड पर नज़र दौड़ायी. हां, उसके भी घर में अब कोई है जो राह देख रही होगी. वह भी अब अकेला नहीं है.

रफ़्तार थोड़ी कम हुई और अब कम ही रहेगी रुपौली तक!

...लेकिन रफ़्तार कम करने और गियर बदलने में थोड़ी देर हो गयी. ट्रैक्टर के अगले पहिए तो निकल गये थे मगर पिछले बड़े चक्के और ट्रेलर गड्ढे के कीचड़ में बुरी तरह फंस गये. जुलमी जोर लगाता रहा लेकिन कोई फ़र्क नहीं पड़ रहा था.

मकुंदी ने अपना मोबाइल देखा. पांच बज चुके थे और अभी रुपौली भी नहीं आया. बह घबराया और मोबाइल से काल करना शुरू किया. शायद वह मंडी के सेठ को फ़ोन लगा रहा था या बगल के गांव में अपने ससुराल वाले को. इतना सबेरे कौन फ़ोन उठाएगा?

दोनों ने कमर कसी. ट्रेलर से फावड़ा उतारा और लकड़ी के दो–चार तख़्ते. जुलमी ने टायर के आगे–पीछे से कीचड़ हटाना शुरू किया. मकुंदी ने टायर के आगे तख़्ता लगाया. जुलमी ने फिर कोशिश की, लेकिन चक्के थोड़ा आगे बढ़कर फिर उसी जगह जम गये. ऐसा पहले भी होता था लेकिन गाड़ी निकलती थी. 'आज कौन–सा ग्रह है! हे गुरू महाराज!,' बेबस मकुंदी के मुंह से निकल पड़ा.

दोनों ने दो–तीन बार फिर वही रणनीति आजमायी. थक–पककर जुलमी ने जबाव दे दिया, 'भैया, छह तो यहीं अब हिलेनडोले' में बज गये. कोई किरान या ट्रैक्टर बुलाना ही होगा.'

मकुंदी का मोबाइल बज उठा. उसके साले का फ़ोन था, 'जीजा जी, सब ठीक तो है? सुबह-सुबह फ़ोन देखा.' मकुंदी की जान में थोड़ी जान आयी. बोला, 'अरे क्या बताएं यहां कठपुला के आगे हम लोग फंसे हैं, मतलब मक्के से लोड ट्रेलर पूरा गड्ढे में फंसा खड़ा है. आठ बजे तक कुरसेला पहुंचना है, नहीं तो सब बंटाढार!' उसने देखा 'बंटाढार' सुनकर जुलमी थोड़ा उदास हो गया था. उसकी उदासी का मतलब वह समझ रहा था. उसके मुंह से निकलने ही वाला था, 'उदास मत हो जुलमी, नकमुन्नी और साड़ी

लेकर तू ज़रूर घर लौटेगा,' लेकिन वह रुक गया.

मकुंदी का साला आठ–दस युवकों के साथ वहां पहुंचा. सबने फिर कीचड़ बटोरकर हटाया. तख़्ता लगाया. तब तक ट्रैक्टर लेकर आगे से उसका ड्राइवर भी आया. लोहे के मोटे चेन से उसे बांधकर फंसे ट्रैक्टर को ख़ूब खींचा, लोग धक्के भी लगा रहे थे.

...आख़िर तीसरी कोशिश कामयाब हुई. मकुंदी की जान में पूरी जान आ गयी. मेहमाननवाजी या चाय– चुक्कड़ के लिए समय नहीं ही था. पौने सात बज चुके थे.

उसने तुरंत सेठ को फिर से फ़ोन लगाया लेकिन वह नहीं उठा रहे थे. मकुंदी की आशंका थोड़ी बढ़ गयी. जुलमी तो सड़क के हिसाब से गाड़ी खूब भगा रहा था लेकिन समय का कांटा आठ की तरफ़ और तेज़ी से भाग रहा था.

जो डर था वही हुआ. सेठ का फ़ोन आया, 'मकुंदी जी, अब आने से कोई फ़ायदा नहीं. यहां तो सात बजे से ही इतना माल पहुंच गया है कि एक्सपोर्टरवाले अब मना कर रहे हैं.' सुनकर सन्न हुआ मकुंदी फिर भी संभलकर बोला, 'लेकिन सेठ आपने तो आठ बजे तक का समय..., और मेरी गाड़ी भी डोभा के पास डेढ़ घंटे तक फंसी रही वरना माल लेकर..., सेठ ने फ़ोन कट कर दिया. कहानी सुनने के लिए समय कहां है! मकुंदी बदहवास होकर फ़ोन लगाता रहा लेकिन सेठ काल उठा ही नहीं रहा था.

पक्का सवा आठ बजे जुलमी कुरसेला ठेक गया था. सेठ की गद्दी के आगे छोटी-बड़ी कम से कम सौ गाड़ियां खड़ी थीं, मक्के की बोरियों से लदी. जुलमी का ट्रैक्टर सबसे पीछे खड़ा था. इन गाड़ियों की भीड़ में बहुत पीछे.

सेठ के सामने मकुंदी बहुत गिड़गिड़ाया था कि पंद्रह के भाव से ले लो सेठ! साढ़े चौदह... चौदह भी मंजूर है. शायद वह भूल रहा था बाज़ार के नियम बड़े निर्मम होते हैं. सेठ ने झिड़कते हुए इतना कहा था, 'अब तो ग्यारह का भी बाज़ार–भाव नहीं है मकुंदी.

मकुंदी को दोहरा झटका लगा. ग्यारह की तो ख़रीदी ही थी.

जुलमी ने भारी मन से कहा, 'भैया दे दो ग्यारह में. बाद में और कम...? आगे वह बोल नहीं पाया था.

मकुंदी सोच में पड़ गया. तभी उसका मोबाइल बजा. गुलाबबाग मंडी से फ़ोन आया, 'साढ़े ग्यारह तक मंडी में पहुंचो तो तेरह का भाव मिलेगा.' वहां के कुछ मंडी व्यापारियों

ग़ज़ल

दर्द

✍ सुधा वर्मा

रौशनी जल रही मीनारों में,
आग झोपड़ों में लग गयी कैसे?

कितनी मासूम मुस्कुराहट थी,
चांदनी आग बन गयी कैसे?

उम्र उंगलियों से फिसलती रही,
गीत लम्हों के गाते रहे कैसे?

आओ आकाश की तलाशी लें,
बिना बादल के बारिश हुई कैसे?

राज खुलने लगे थे जीती हुई बाज़ी के,
कुर्सियां फिर भी बदलने लगीं कैसे?

लुटी इज़्ज़त जो हाथ पहरेदारों के,
शर्म आंखों में बच गयी कैसे?

नोट भरते रहे टकसालों में,
चंद सिक्कों पे बिकती रही ज़िंदगी कैसे?

कफ़न को भी तरसते रहे कई मुर्दे,
देख मंजर को भी, मुंह फेर चल दिये कैसे?

दर्द इस तरह भरा है सीने में जो,
मार खंजर के भी न टपका लहू कैसे?

बहुत हुआ, बस अब न चुप रहा जाता,
चला जो कारवां तो वक़्त बदलेगा नहीं कैसे?

फेज़-१४, के-५०२,
सोनम गोदावरी सी. एच. लिमिटेड,
न्यू गोल्डन नेस्ट, भायंदर (पू.)–४०११०५

को अभी ही मुंबई से फ़ोन आया था कि एक और ट्रिप के माल का बंदोबस्त कर शाम की मालगाड़ी से कटिहार से रवाना कर दें.

बस क्या था, बिना कुछ खाये– पिये दोनों गुलाबबाग की ओर निकल पड़े. जुलमी के चेहरे पर मुस्कान लौट आयी थी. लेकिन मकुंदी के मन में अभी भी अंदेशा था.

ट्रैक्टर की बढ़ती स्पीड देखकर आदतन मकुंदी बोल उठा, 'आराम से जुलमी, जान बचेगी तो सुतली-डोरी बंटकर खा लेंगे. 'जुलमी थोड़ा डरते हुए मुस्कुराकर बोला, 'अब तो प्लास्टिक की रस्सी चलती है मकुंदी भैया!' मकुंदी को जैसे ठोकर-सी लग गयी.

फिर मोबाइल बजा. अग्रवाल सेठ के यहां से फ़ोन था, 'कहां तक पहुंचे मकुंदीजी? पंद्रह–बीस मिनट में पहुंचिए तो तेरह का भाव, नहीं तो ग्यारह से ज़्यादा नहीं मिलेगा वो भी पैसे दो सप्ताह बाद. मकुंदी ने समय देखा और वह फिर मायूस हो गया था. 'लेकिन साढ़े ग्यारह तक पहुंच जायेंगे सेठ.' शायद बेसुध मकुंदी कटे हुए फ़ोन पर ही बता रहा था.

जुलमी को थोड़ा-थोड़ा समझ में आ रहा था लेकिन अपने सेठ से पूछने की हिम्मत नहीं हो रही थी. सपने देखना या ख़्वाहिश करना जिस मालिक ने सिखाया उसके मुंह से निराशा भरी बातें सुनना उसे गंवारा नहीं हो रहा था.

ठीक साढ़े ग्यारह बजे मकुंदी का माल गुलाबबाग मंडी पहुंचा लेकिन यहां भी वही दृश्य.

जुलमी अब उम्मीद खो चुका था. जान पर खेलकर इतने कम समय में माल पहुंचाया लेकिन सब सोड्डा... स्वाहा.

यहां भी अब सेठ साढ़े दस से ऊपर नहीं जा रहा है. आधा घंटा लेट हो गया था.

मकुंदी का दिल बैठ गया.

बाबूजी की बात एकाएक याद आ गयी, मंडी के लिए चट्टी से उठा माल और विसर्जन के लिए मंदिर से उठी मूर्ति वापस नहीं लाते.

कलेजे पर पत्थर रखकर साढ़े दस में सेठ की दुकान के सामने ट्रेलर खाली कर दी उसने. पैसा दो सप्ताह बाद.

ट्रैक्टर पर बैठा जुलमी देख रहा था — मकुंदी भैया सेठ की दुकान से लौट रहे हैं, हारा हुआ योद्धा जैसे पैर पटकते युद्ध-शिविर में वापस आ रहा हो!

इससे पहले कि मकुंदी कुछ बोल पाता, जुलमी ने हंसी ओढ़कर कहा, 'भैया, एक बात कहूं? नकमुन्नी और सिल्कवाली... सिर्फ़ मेरे और आपके बीच ही.., फिकर मत करो, मैंने अपनी घरवाली को तभी से अब तक कुछ नहीं बोला इसके बारे में.'

मकुंदी थोड़ा रुआंसा हो गया, 'लेकिन मेरी बातों का क्या जुलमी?'

जुलमी बस इतना ही बोल पाया, 'अब अगली खेप में भाईजान...' उसकी बातों में संतोष और आशा की जो झलक थी, मकुंदी उसमें सब कुछ भूलने की कोशिश कर रहा था. उसे अब भूख लग रही थी.

ट्रैक्टर सड़क पर चढ़ चुका था. खाली ट्रेलर भी जुलमी को बहुत भारी लग रहा था. पीछे घाटे का असह्य बोझ... और आगे गांव की ओर लौटती फिर वही सड़क... मकुंदी की भूख बढ़ती ही जा रही थी और जुलमी को घर पहुंचने की जल्दी थी.

मुख्य प्रबंधक,
भारतीय स्टेट बैंक,
पणजी सचिवालय शाखा,
फ़ैज़ेडा बिल्डिंग, पणजी, गोवा–४०३००१
मोबाइल सं : ७०३०६५४२२३/ ७४९९५३२८४७
ई-मेल : kumardilip2339@gmail.com

पाठकों/ग्राहकों से निवेदन

कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय फ़ॉर्म पर अपना नाम, पता, पिन कोड सहित अंग्रेज़ी में साफ़-साफ़ लिखें. मनीऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित इसकी सूचना अवश्य दें. आपकी सदस्यता अगले अंक से लागू होगी. पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें. **- संपादक**

कथा-पंडाल

सुरेंद्र रघुवंशी

२ अप्रैल १९७२.
गनिहारी, जि. अशोकनगर (म. प्र)
शिक्षा- हिंदी साहित्य, अंग्रेज़ी साहित्य और राजनीति विज्ञान और शिक्षा शास्त्र में स्नातकोत्तर.
आकाशवाणी और दूरदर्शन से काव्य पाठ.
देश की प्रमुख समकालीन साहित्यिक पत्रिकाओं 'समकालीन जनमत', 'कथाबिंब', 'कथन', 'अक्षरा', 'वसुधा', 'युद्धरत आम आदमी', 'हंस', 'गुड़िया', 'वागर्थ', 'साक्षात्कार', 'अब', 'कादम्बिनी', 'दस्तावेज' , 'काव्यम', 'प्रगतिशील आकल्प', 'सदानीरा','समावर्तन', 'बया' एवं वेब पत्रिकाओं', 'वेबदुनिया', 'कृत्या', 'प्रतिलिपि', 'मातृ भारती' सहित देश की तमाम प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में कविताएं, कहानी, आलोचना प्रकाशित. कविता संकलन 'ज़मीन जितना', 'स्त्री में समुद्र', 'पिरामिड में हम' और 'गुलमोहर हारा नहीं', 'सांच कहै तो मारन धावै' (डायरी) प्रकाशित.
मध्य प्रदेश शासन के स्कूल शिक्षा विभाग में शिक्षक के रूप में कार्यरत. कविता कोष में कविताएं शामिल. कविता संकलन 'पिरामिड में हम' के लिए मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन का २०१७ का प्रतिष्ठित 'वागीश्वरी पुरस्कार' हिंदुस्तान टाइम्स डॉट कॉम और नवभारत क्रॉनिकल का संयुक्त बोल्ट अवार्ड.
मानवाधिकार जन निगरानी समिति में राष्ट्रीय कार्यकारिणी सदस्य के रूप में कार्य, प्रांतीय अध्यक्ष मध्य प्रदेश राज्य शिक्षक उत्थान संघ, जनवादी लेखक संघ में प्रांतीय संयुक्त सचिव (म. प्र.) एवं राष्ट्रीय कार्य परिषद में सदस्य.

महीनों से कथा की तैयारियां चल रही थीं और सालों से चर्चाएं. शहर के चप्पे-चप्पे पर कथा के प्रचार और सूचना के पोस्टर्स चिपके थे. केबल टीवी, अख़बार और ऑटो पर माइक लगाकर विज्ञापननुमा प्रचार भी कम न था उस पर भी एक जीप महीना भर से ग्रामीण क्षेत्र में घूम-घूमकर कथा की सूचना के पेंपलेट बांट रही थी. पठार के विशाल मैदान में एक हफ़्ते में तो टेंट लगा. टेंट सामग्री कई ट्रकों में आयी थी. तैयारियों में लगे भक्तों का उत्साह देखते ही बनता था. वे इसे अपने जीवन के यज्ञ के हवनकुंड में अपने तन-मन और धन की ज़रूरी आहुति मानकर बहुत उत्साह से काम और निगरानी में जुटे थे.

'स्वामी आनंद देव महाराज' कोई छोटे-मोटे संत नहीं हैं. राष्ट्रीय संत हैं वे. लगभग सभी धार्मिक चैनलों पर उनके प्रवचन प्रसारित होते हैं. विधायक, सांसद और बड़े-बड़े मंत्री महाराज की चरण वंदना करने चले आते हैं. उनके आश्रम और कथा–पंडालों के बाहर नेताओं, उद्योगपतियों और तमाम धन्नासेठों की महंगी चमचमाती गाड़ियों का तांता लगा रहता है. उनका सर्वसुविधा युक्त भव्य आश्रम कई एकड़ में फैला है. महाराज अक्सर हवाई यात्रा करते हैं अथवा अपनी महंगी कार से ही चलते हैं. उनके भक्तों में बड़े-बड़े पूंजीपति शामिल हैं. महाराज की कथा हमारे शहर में हो रही है यह हमारे पूर्व जन्मों के पुण्यों का फल है वरना वे यूं ही अपनी कथा की स्वीकृति नहीं देते हर कहीं. कब से हमारी अर्जी लगी थी. अब जाकर आनंद देव जी महाराज ने उसे मंजूर कर हम पर कृपा की है.' भक्तगण यही चर्चा अपनी-अपनी टोलियों में कर रहे हैं.

शहर की सभी सड़कों, तिराहों और चौराहों पर आनंद देव महाराज के बड़े फ़ोटो वाले आकर्षक होर्डिंग्स लगे हैं. जिनमें प्रमुख सत्ताधारी दल के बड़े नेताओं से लेकर छुटभैये नेताओं तक के फ़ोटो सहित नाम नीचे की कतार में छपे हैं. होर्डिंग्स में कथा की

तारीख़, समय और स्थान के ज़िक्र के साथ ही राधा कृष्ण के चित्र भी शोभायमान हैं. होर्डिंग्स क्या हैं, कथा में पधारने के लिए शहर भर के लिए खुले आमंत्रण हैं.

कथा का पहला दिन है. कथा सुनने के लिए देश भर से महाराज जी के ख़ास भक्त भी आये हैं, जो पंडाल के पीछे बने टेंट के कक्षों तथा अधिकांश शहर के होटलों और लॉजों में ठहरे हुए हैं. महिलाएं सुबह जल्दी उठकर अपने घर, रसोई के काम-काज निबटाकर कथा में जाने के लिए बहुत जल्दबाजी और उत्साह में हैं. आज कथा का पहला दिन है. विशाल पंडाल धीरे-धीरे भक्तों से खचाखच भर गया. भव्य मंच पर सबकी निग़ाहें टिकी हुई हैं. संगीत पार्टी के भजन गायक कर्णप्रिय भजन गा रहे हैं, जिसे सुनकर भक्तगण आनंद से झूम रहे हैं. इस बीच भक्तों का आना निरंतर ज़ारी है. जिसको जहां जगह मिल जाती है, बैठ जाता है. सभी भक्तगण आनंद देव महाराज की प्रभुता के आगे नतमस्तक हैं. जब पंडाल खचाखच भर गया तब भक्तगण पंडाल के बाहर धूप में बिछे फ़र्शों पर बैठकर कथा श्रवण का आनंद ले रहे हैं. वैसे भी एक तो ठंड का मौसम फिर सुदूर कहीं कई दिन छाये रहने के बाद बादल आख़िर बरस ही गये. उस बरसात के बाद बादल टूटते ही बढ़ी हुई सर्दी यहां नाक में दम किये हुए है. पर यह लोगों की आस्था ही है जो सर्दी से बेअसर रहते हुए भक्तों को कथा-पंडाल तक ले आयी. यहां बाहर धूप में बैठे भक्तगण कथा और धूप दोनों का एक साथ आनंद ले रहे हैं. उनका मानना है कि कथा अज्ञान से और भगवान भास्कर के चेहरे की कांति धूप सर्दी से मुक्ति देगी.

स्वयंसेवक एक जैसी ड्रेस पहने जगह-जगह पंडाल में घूम रहे हैं. पंपों द्वारा इत्र का छिड़काव करते हुए युवक घूम रहे हैं. थोड़ी-थोड़ी दूरी पर बड़ी स्क्रीन वाले टी. वी. चल रहे थे. पंडाल में बायीं ओर पुरुष और दायीं ओर महिलाएं हैं बीच में गैलरी है. गैलरी में जयकारे लगवाते हुए आयोजक मंडल के युवा भक्तगण चल फिर रहे हैं.

थोड़ी ही देर में स्वामी आनंद देव जी महाराज मंच पर प्रगट हुए. उनके चेलों ने मंच से महाराज के जोर-जोर से जयकारे लगाये. उपस्थित भक्तों के समूह ने महाराज के जयघोष से समस्त वातावरण को भर दिया. महाराज ने आसन ग्रहण किया भक्तजन आनंद देव महाराज के सौंदर्य को देखते ही रह गये. तीस पैंतीस साल की उम्र, गौर वर्ण, ऊंचा क़द, सुडौल शरीर, बड़ी-बड़ी कजरारी आंखें, लंबी भुजाएं, माथे पर चंदन का सुसज्जित लेप, रंगीन कढ़ा हुआ कुर्ता, गले में आकर्षक मालाएं, कानों में कुंडल, गर्दन तक लहराते हुए खिले-खिले बालों के बीच की मांग, चेहरे पर मधुर मुस्कान के साथ आनंद देव आनंद की साक्षात मूर्ति और किसी फ़िल्मी नायक की तरह सुंदर लग रहे थे. जिनके आभामंडल को रेखांकित करने के लिए बैकग्राउंड के पर्दे पर सिर के बिल्कुल पीछे किरणों के प्रसार सहित सूरज आलोकित हो रहा था और हनुमान जी का विशालकाय चित्र था. आनंद देव ने आंखें बंद कीं. नीचे वाले मंच पर दायीं ओर बैठे संगीतकारों ने कर्णप्रिय धुन बजायी और दर्शक झूम उठे. फिर भजन की स्वरलहरियों ने भक्तों को आनंद के सागर में डुबो दिया. इसके बाद अपने मधुर कंठ से जब आनंद देव ने भजन गाया तो भक्तगण झूम उठे. भक्तों में से आगे की पंक्ति में गद्दे वाले वी. आई. पी. खंड में बैठे एक भक्त ने मस्त होकर कहा — 'आनंद देव महाराज सचमुच आनंद के सागर हैं.' मधुर संगीत के साथ आनंद देव भजन गा रहे हैं और आज पंडाल में बैठे भक्त झूम उठे. कुछ भक्त, दो चार साधू और दर्ज़नों महिलाएं और जवान लड़कियां भजन के संगीत से क़दमताल मिलाती हुई झूम-झूमकर नृत्य करने लगीं. आनंद देव ने आंखें खोल लीं और अपनी प्रभुता पर आत्ममुग्ध होते हुए गौरवान्वित हुए. पूरा दृश्य ही धार्मिक ग्रंथों में वर्णित स्वर्ग के दृश्य में बदल गया, जहां आनंद देव इंद्र, अग्रिम पंक्ति में विराजमान विशिष्ट धनाढ्य भक्तदेवगण और नृत्यांगनाएं अप्सराओं के रूप में नज़र आ रही थीं. सुसज्जित पंडाल इंद्र की सभा महल की झलक दे ही रहा था. कितने सुखद संसार का दृश्य है यह. न दुःख, न तकलीफ़ और न अभाव. बस केवल आनंद ही आनंद.

भजन समाप्त होने के बाद भक्तों को अपनी लच्छेदार और सावधान वाणी से संबोधित करते हुए संसार की निस्सारता और धर्म की महत्ता के बारे में सविस्तार भक्तों को प्रवचन दिया. उन्होंने काम, क्रोध, लोभ, मोह को त्यागने की ज़रूरत पर बल दिया और दान पुण्य के महत्व पर विशेष प्रकाश डाल कर भागवत कथा का प्रारंभ किया —

'एक बार भगवान विष्णु एवं देवताओं के परम पुण्यमय क्षेत्र नैमिषारण्य में शौनकादि ऋषियों ने भगवत्प्राप्ति की इच्छा से सहस्त्र वर्षों में पूरे होने वाले एक महान् यज्ञ का अनुष्ठान किया. एक दिन उन लोगों ने प्रातःकाल अग्निहोत्र आदि नित्यकृत्यों से निवृत्त होकर सूतजी का पूजन किया और उन्हें ऊंचे आसन पर बैठाकर बड़े आदर से यह प्रश्न

किया.

ऋषियों ने कहा — सूतजी! आप निष्पाप हैं. आपने समस्त इतिहास, पुराण और धर्म शास्त्रों का विधिपूर्वक अध्ययन किया है तथा उनकी भलीभांति व्याख्या भी की है. वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ भगवान बादरायण ने एवं भगवान के सगुण-निर्गुण रूप को जानने वाले दूसरे मुनियों ने जो कुछ जाना है, उन्हें जिन विषयों का ज्ञान है, वह सब आप वास्तविक रूप में जानते हैं. आपका हृदय बड़ा ही सरल और शुद्ध है, इसी से आप उनकी कृपा और अनुग्रह के पात्र हुए हैं. गुरुजन अपने प्रेमी शिष्य को गुप्त-से-गुप्त बात भी बता दिया करते हैं. आयुष्मान! आप कृपा करके यह बतलाइए कि उन सब शास्त्रों, पुराणों और गुरुजनों के उपदेशों में कलियुगी जीवों के परम कल्याण का सहज साधन आपने क्या निश्चय किया है?

अपनी मधुर और संतुलित वाणी में उन्होंने इस प्रसंग के साथ ही भागवत के कुछ और कथा प्रसंगों के संक्षिप्त विवरण के साथ ही प्रथम दिवस की कथा का विसर्जन किया. उनके प्रमुख शिष्य ने मंच से ही दानदाताओं की लंबी सूची का वाचन किया और दान के महत्व को प्रतिपादित करते हुए भक्तगणों से अधिकाधिक दान देकर अपने मानव जीवन को सफल बनाने के लिए प्रेरित किया. भक्तगण आरती प्रसाद के बाद अपने घरों की ओर चल पड़े. जैसे अथाह जन सैलाब की बाढ़ नगर की सड़कों पर बह निकली हो. पंडाल के बाहर लगी आश्रम की दुकानों पर भी भक्तों की भीड़ उमड़ पड़ी. यहां आनंद देव के प्रवचनों की कैसेट्स, सी. डी., क़िताबें, आश्रम की पत्रिकाएं, धार्मिक पूजा सामग्री की अलग-अलग दुकानें थीं. वाहनों की लंबी कतारें पार्किंग से क्रमशः रेंगने लगीं. दूर खड़े ट्रैक्टरों की ट्रालियों में बैठकर ग्रामीण भक्त अपने गांवों की ओर रवाना होने लगे. पंडाल के माइकों में आनंद देव के गाये भजनों की स्वर लहरियां भक्तों के कानों में रस घोलती रहीं.

आज कथा का दूसरा दिन है भक्तों का उत्साह देखते ही बनता है. भक्तगण अपने दैनिक क्रिया कर्मों से निवृत होकर जल्दी-जल्दी कथा स्थल की ओर चल पड़े. आज के दिन का दृश्य भी कल का ही दोहराव था.

कुछ भजनों के गायन के बाद आनंद देव ने कथा प्रारंभ की — 'भक्त जनो! पुराणों के मुताबिक, ब्रह्माजी द्वारा भगवान नारायण की स्तुति किये जाने पर भगवान नारायण ने उन्हें संपूर्ण भागवत-तत्त्व का उपदेश केवल चार श्लोकों में दिया था. आइए, इन चार श्लोकों का पाठ करें जिनके पाठ से पूरी भागवत पाठ का फल मिलता है.

प्रथम श्लोक —

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत् सदसत् परम।।

पश्चादहं यदेतच्च यो एवावशिष्येत सोएस्म्यहम।।

अर्थात — सृष्टि से पूर्व केवल मैं ही था. सत्, असत या उससे परे मुझसे भिन्न कुछ नहीं था. सृष्टि न रहने पर (प्रलयकाल में) भी मैं ही रहता हूं. यह सब सृष्टिरूप भी मैं ही हूं और जो कुछ इस सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय से बचा रहता है, वह भी मैं ही हूं.

द्वितीय श्लोक —

ऋतेएतत् यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।।

तद्विद्यादात्मनो माया यथाएवाभासो यथा तमः।।

अर्थात — जो मुझ मूल तत्त्व को छोड़कर प्रतीत होता है और आत्मा में प्रतीत नहीं होता, उसे आत्मा की माया समझो. जैसे (वस्तु का) प्रतिबिंब अथवा अंधकार (छाया) होता है.

तृतीय श्लोक —

यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।

प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम?

अर्थात — जैसे पंचमहाभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) संसार के छोटे-बड़े सभी पदार्थों में प्रविष्ट होते हुए भी उनमें प्रविष्ट नहीं हैं, वैसे ही मैं भी विश्व में व्यापक होने पर भी उससे असंपृक्त हूं.

चतुर्थ श्लोक —

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुना आत्मनः।

अन्वय व्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा?

अर्थात — आत्मतत्त्व को जानने की इच्छा रखनेवाले के लिए इतना ही जानने योग्य है कि अन्वय (सृष्टि) अथवा व्यतिरेक (प्रलय) क्रम में जो तत्त्व सर्वत्र एवं सर्वदा रहता है, वही आत्मतत्व है.

पुराणों के अनुसार, इस चतु:श्लोकी भागवत के पाठ करने या फिर सुनने से मनुष्य के अज्ञान जनित मोह और मदरूप अंधकार का नाश हो जाता है और वास्तविक ज्ञान रूपी सूर्य का उदय होता है. इसलिए अपने ज्ञान चक्षुओं को जागृत करने के लिए श्रीमद्भागवत कथा का रसपान करना चाहिए. यह कथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, और जन्म-मृत्यु के आवागमन से हमें मुक्ति प्रदान करते हुए हमारे मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करती है...' आनंद देव महाराज की

कथा अनवरत ज़ारी थी.

आज, कल की अपेक्षा अधिक भीड़ थी. हां, आज कथास्थल के सामने थोड़ी ही दूरी पर अचानक लग गया एक छोटा सा टेंट एक नया दृश्य था. इस पर लाल झंडे लहरा रहे थे. और एक लॉउड स्पीकर पंडाल की ओर मुंह करके बांध दिया गया था. कथा सुनने जा रहे भक्तगण उसे देखते हुए निकल रहे थे पर यह क्या है यह उनकी समझ में नहीं आ रहा था. उनके दिमाग़ में तो आगामी कथा सुनने की जल्दबाजी थी जो उनके पैरों में गति बनकर दौड़ रही थी और दिमाग़ों में विचारशून्यता की हवा भर गयी थी. हुआ यह कि पढ़े-लिखे बुद्धिजीवी, सोशल एक्टिविस्ट और क्षेत्र के जाने-माने जन आंदोलनकारी शैलेश कुमार ने आज आनंद देव और अन्य बाबाओं के कच्चे चिट्ठे खोलने और किसानों, मज़दूरों सहित आमजनों को अपने शोषण के विरुद्ध अपने जन अधिकारों के लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित करने और जन जागृति का मन बना लिया था. उनके छोटे से टेंट में १०-१२ कुर्सियां और ८-१० कार्यकर्ता भी कुछ पेंपलेट्स के साथ थे. उनमें से एक कार्यकर्ता ने वहां से गुज़रने वाले भक्तों के रास्ते में खड़े होकर पेंपलेट बांटने शुरू कर दिये. अधिकतर भक्तगण पेंपलेट लेने से इंकार करते हुए जल्दी-जल्दी भागते हुए चल रहे थे कि कथा की ट्रेन भी न चूक जाये और उसमें समय रहते अपनी सीट भी मिल जाये. पर बीच-बीच में इक्का-दुक्का लोगों के हाथों में वह जबरन पेंपलेट थमा ही देता था. इन पेंपलेट्स में आनंद देव के २० लाख रूपए लेकर कथा करने आने का समाचार, उनकी लग्ज़री लाइफ़, कथा के व्यापार, बाबाओं के सेक्स स्कैंडल, अपराधों की नाम सहित सूची, धर्म को व्यापार बनाकर लोगों के धन, मन और यहां तक कि राजनैतिक दलों द्वारा उनके वोटों को लूटने की बात कहते हुए इस गोरखधंधे से सावधान होकर इसी भीड़ के साथ किसान, मज़दूर और आमजनों को अपने शोषण के ख़िलाफ़ लड़ने, आंदोलन करने की अपील की गयी थी. कथा पंडाल खचाखच भर गया था. कुछ भक्त बाहर धूप में बिछे फ़र्शों पर अपना स्थान सुरक्षित कर चुके थे. ठंड के मौसम में धूप सुकूनदायी भी थी. पर्चे पंडाल के कई भक्तों के हाथों होते हुए कुछ आयोजक गणों के हाथों में भी पहुंच चुके थे और यह ख़बर आनंद देव महाराज के कानों तक भी जा पहुंची थी. जब वे कथा करने मंच पर आये तो कल की तरह तेज़ उनके मुखमंडल से ग़ायब था और वे कुछ तनाव में दिखाई दे रहे थे. परंतु वे भरसक सामान्य दिखने का प्रयास कर रहे थे. यही हाल आयोजकों और कार्यकर्ताओं का था.

वातावरण निर्माण के लिए आनंद देव ने अपनी मधुर आवाज़ में एक कर्णप्रिय भजन गाया और संगीतकारों ने उस भजन को अपनी जुगलबंदी से श्रोताओं के ह्रदय में पहुंचा दिया — 'प्रभु आपकी कृपा से, सब काम हो रहा है/ करते हो तुम कन्हैया, मेरा नाम हो रहा है ...' भक्तगण झूम उठे और महिला और पुरुष जो नाचने में पारंगत थे नाचने लगे. भजन समाप्त होते ही मंच पर दौड़ता हुआ आयोजन समिति का एक मुख्य कार्यकर्ता बिल्कुल समीप आया और उसने आनंद देव के कान के पास मुंह करके उन्हें कोई गुप्त सूचना दी. आनंद देव के हाव भाव से लग रहा था कि अपने उस भक्त को वे समझाने–बुझाने का प्रयास कर रहे थे. जब कथा-पंडाल में पर्चों की तादात बढ़ गयी तब पर्चों में छपी बातों के बारे में भक्तों में कानाफूसी होने लगी और कथा में व्यवधान होते देख आनंद देव ने ऐलान किया कि कोई भी भक्त किसी भी प्रकार की अफ़वाह पर ध्यान न दे और सभी मन लगाकर कथा श्रवण करें जिससे मनुष्य जीवन सार्थक हो और मोक्ष का मार्ग प्रशस्त हो. इस तरह सब कुछ सामान्य हो गया और कथा अपनी रफ़्तार से पुनः चल पड़ी.

पर एक्टिविस्ट शैलेश कुमार का मन इतने से भी नहीं भरा. उनके मन में कोई विचार आया और उन्होंने वहां मौजूद अपने लगभग दर्ज़न भर साथियों से कोई मंत्रणा की. फिर शैलेश कुमार ने माइक पर अपना भाषण देना शुरू कर दिया. उन्होंने कहा — 'दोस्तों! आज हम किसान, मज़दूर और आमजन व्यवस्था द्वारा ठगे जाकर शोषित हो रहे हैं. हमको हमारे जनाधिकारों से वंचित कर दिया गया है. हमें इस शोषण से मुक्ति के लिए आवाज़ उठानी चाहिए. पर आवाज़ उठाये कौन? लुटने-पिटने वाले किसान, मज़दूर और आम आदमी तो कथा–पंडालों में बैठे कथा सुन रहे हैं और कथावाचक संपन्न, लंपट व्यभिचारी धर्म के व्यापारी हैं. आनंद देव के सेक्स स्कैंडल की ख़बरें शायद आपने न सुनी हों. पर इसका भी मुझे पता है. यह बहुत कम चर्चा में आया और पैसे के दम पर दबा दिया गया मामला है. पर आप और भी बड़े राष्ट्रीय संत कहे जाने वाले बड़े बाबाओं के सेक्स स्कैंडल, बलात्कार और अन्य अपराधों के किस्से सुन और टीवी में देख चुके हैं; इनमें से कई बड़े तथाकथित संत और बाबा तो अब भी जेल में हैं. कब तक सोते रहोगे भाइयों और बहनों! अब तो आंखें खोलो और बीस-तीस

लाख रुपए लेकर कथा करने वाले इन लुटेरे व्यापारियों का गणित समझो. यह भीड़ अपने शोषण के विरोध में सड़कों पर आंदोलन में उतर जाये तो सरकारों तक को झुकना पड़े और जनता की मांगें माननी पड़ें. इस देश में हर साल बारह हज़ार से ज़्यादा किसान कर्ज़ में डूबकर आत्महत्या कर रहे हैं और सरकारें अपनी ज़िम्मेदारी से पल्ला झाड़कर कुंभकर्णी निद्रा में सोयी हैं. ...और हम किसान अपने शोषण के विरोध में आंदोलन करने के बजाय यहां पंडालों में बैठकर धैर्य, संतोष, शांति, पूर्वजन्मों के फल और क्रोध, लोभ, मोह आदि को छोड़ने के सुनियोजित पाठ की कथा सुन रहे हैं! और वह भी यौन दुराचार के मामले में लिप्त संत का चोला ओढ़े आरोपी के द्वारा...' शैलेश कुमार का भाषण ज़ारी था. कथा स्थल से इतनी दूरी भी नहीं थी कि बिल्कुल आवाज़ ही वहां तक न आ सके. आयोजकों, व्यवस्थापकों और गद्दी पर विराजमान कथावाचक आनंद देव महाराज के चेहरों पर हवाइयां उड़ी हुई थीं. जिससे वहां हड़कंप जैसा मचा हुआ था. हालांकि कथा स्थल पर लगे अनगिनित लॉउड स्पीकरों के सामने वहां बहुत कम सुनाई दे रही थी. शैलेश कुमार की आवाज़ नक्कारखाने में तूती की आवाज़ साबित हो रही थी. पर था तो वह विरुद्ध और अक्रामक स्वर ही; इसलिए ख़तरनाक था. शैलेंद्र कुमार सबकी आंखों में किरकिरी बने हुए थे. उन्हें सबक सिखाने की कोई योजना भी यहां बनी पर आनंद देव ने अपनी दूरदर्शी घाघ दृष्टि से न जाने कौन से आगत संभावित ख़तरे को ताड़कर आयोजक भक्तों को शांत रहने और इस मामले को तूल न देने के लिए मंच से ही आदेशित किया और मुख्य आयोजक को इशारे से बुलाकर उसके कान में कुछ कहा और कथा को आगे बढ़ाया.

कमल किशोर जी दो तीन भक्तों के साथ शैलेश कुमार के उस छोटे से टेंट पर आये जहां से शैलेश कुमार इस कथा के विरोध में माइक से अपना भाषण दे रहे थे और उनके कार्यकर्ता साथी पेंपलेट बांट रहे थे. उन्होंने शैलेश कुमार से विनम्रतापूर्वक अभिवादन किया और चर्चा करने के प्रस्ताव के साथ यह विरोध भाषण रोकने का आग्रह किया. शैलेश कुमार कमल किशोर जी के परिचित थे और उन दोनों के मधुर संबंध भी थे. इसलिए वे सहर्ष अपना भाषण रोक कमल किशोर जी से बात करने को राजी हो गये. कमल किशोर ने अपनी बात रखी — 'शैलेश कुमार जी आप तो कथा भागवत का ही विरोध करने लगे. अपने धर्म को उसकी धार्मिक गतिविधियों के साथ मानना हमारा अधिकार है. इस तरह आपको धर्म का विरोध नहीं करना चाहिए.' शैलेश कुमार ने त्वरित और संयत स्वर में उत्तर देते हुए कहा — 'कमल किशोर जी धर्म नितांत व्यक्तिगत मामला है और हर धर्म का उद्देश्य अपनी मूल भावना में संवेदनशील, मनुष्यता का संरक्षक और परोपकारी होता है. हमारे संविधान में हर नागरिक को अपनी इच्छानुसार अपना धर्म मानने और तदानुसार आचरण करने की आज़ादी है. इस सत्य को मैं भी जानता हूं.'

'फिर आप जानते हुए भी धर्म का विरोध क्यों कर रहे हो? इस तरह तो आप एक बड़े समुदाय की आस्था को चोट पहुंचाने का काम कर रहे हो!'

'नहीं कमल किशोर जी हम धर्म का नहीं पाखंड, आडंबर, अन्याय, शोषण और अपराध का विरोध कर रहे हैं. इसे धर्म का विरोध नहीं कहा जा सकता.'

'आपके विरोध करने की इस शैली, समय और स्थान को उचित कहा जा सकता है?'

'जी बिल्कुल.'

'कैसे?'

'यहां अपार जन समुदाय है और यह शोषित और पीड़ित है. हम इसी की लड़ाई लड़ रहे हैं. इसे ही मूर्ख बनाया जा रहा है. और यह गद्दी पर बैठा हुआ कथावाचक आनंद देव सेक्स स्कैंडल में फंस चुका व्यभिचारी और पाखंडी है. जिन लोगों का चरित्र ख़ुद कालिख से पुता हो वे हमें चरित्रवान बनाने की शिक्षा देंगे? ये लुटेरे और व्यापारी भी हैं जो धर्म के नाम पर भोली भाली जनता को लूट रहे हैं. इस तरह ये अपराधी हैं और अपराधियों का विरोध करना और जन जागृति का प्रसार करना हमारा संवैधानिक अधिकार है. और यही हम कर रहे हैं.'

'आपके तर्कों से जीतना मेरे लिए असंभव है शैलेश कुमार जी. मैं तो शांति व्यवस्था बनाये रखने के लिए कथा आयोजक मंडल की ओर से आपसे पुनः प्रार्थना ही कर सकता हूं कि आप अपना विरोधपूर्ण भाषण देना और ये पर्चे बांटना बंद कर दें.' हाथ जोड़ते हुए यह कहकर कमल किशोर निराश होकर अपने साथियों सहित कथा–पंडाल की ओर लौट गये.

शैलेश कुमार का माइक फिलहाल बंद हो गया और वहां पर्चे बांटना भी बंद कर दिया गया. पर शैलेश कुमार के दिमाग़ में उनकी बेचैनी की उथल-पुथल मची थी. वे अपने टेंट के सामने ही विचारमग्न होकर जल्दी-जल्दी टहलने

लगे. थोड़ी देर बाद ही टेंट के अंदर रखी कुर्सी पर बैठकर उन्होंने अपने कार्यकर्ता साथियों से मंत्रणा की. फिर टेंट में लगे दो लाल झंडे निकाले गये. दो कार्यकर्ताओं को लाल झंडे और एक को पेंपलेट देकर शैलेश कुमार ने उन्हें कथा-पंडाल की ओर भेज दिया और उनके रवाना होते ही कोतवाली में फ़ोन भी कर दिया. अपने छह साथ कार्यकर्ताओं के साथ वे टेंट की कुर्सियों पर बैठ गये. किसी आगत घटना की अनिश्चितता की पीड़ा उनके चेहरे पर पढ़ी जा सकती थी.

थोड़ी ही देर में शैलेश कुमार के साथी लाल झंडों और पेंपलेट के साथ कथा-पंडाल के सामने पहुंच गये. पंडाल पर असंख्य पीले ध्वज लहरा रहे थे. हवा उनके पक्ष में थी. भक्तगण कथा रस का पान करने में मस्त थे. कथा आयोजक मंडल के बाहर चक्कर लगाकर व्यवस्थाओं का जायज़ा ले रहे कार्यकर्ताओं की नज़र इन दो लाल झंडाधारी और एक पेंपलेट बांटने वाले अपने विरुद्ध कार्यकर्ताओं पर पड़ी तो एक वालेंटियर दौड़कर उनकी ओर आता हुआ चिल्लाया — 'जे मादरचोद झां भी आ गये.'

दूसरा भी दौड़ा और चीख़ते हुए बोला — 'मारौ साले देश द्रोहियन खों.'

तीसरे ने कहा — 'जेई हैं चीन के एज़ेंट.'

'मार-मार कै भुर्ता बना दो इनको.' चौथा ग़ुस्से से आग बबूला होते हुए बोला.

'इनसें ईं देश खों ख़तरा है. जेई चूतिया गद्दारी कर रय हैं देश सै.' पांचवे ने कहा.

'पाकिस्तान के दलाल वी हैं जे.' छटवें ने कहा.

'इनकी मां की... हमरे देश खों छोड़के जाओ साले चीन और पाकिस्तान.' सातवां चिल्लाया. सातों ने न सिर्फ़ गाली गलौंच में अपनी संस्कृति की सुंदर झांकी प्रस्तुत की बल्कि तीनों को लात घूसों से ख़ूब मारा. उनके चारों ओर भीड़ का एक बड़ा घेरा बन गया. शोर सुनकर पंडाल के भीतर की जनता खड़ी हो गयी. कथा कुछ देर के लिए स्थगित कर दी गयी. जनता में से कुछ दयालुओं ने आगे आकर उन तीनों को बचाया. और वहां से ले जाकर दूर तक शहर की ओर जाने वाले रास्ते तक छोड़ आये. इधर शैलेश कुमार का भाषण जोर-जोर से सबको सुनाई दे रहा था. कथा पुनः होने लगी. तभी सायरन बजाती हुई पुलिस की कई गाड़ियां आयीं. कथास्थल पर तब तक शांति हो चुकी थी. कुछ देर वहां का मौक़ा मुआयना कर पुलिस शैलेश कुमार के टेंट तक गयी. शैलेश कुमार ने पुलिस से अपने कार्यकर्ताओं की

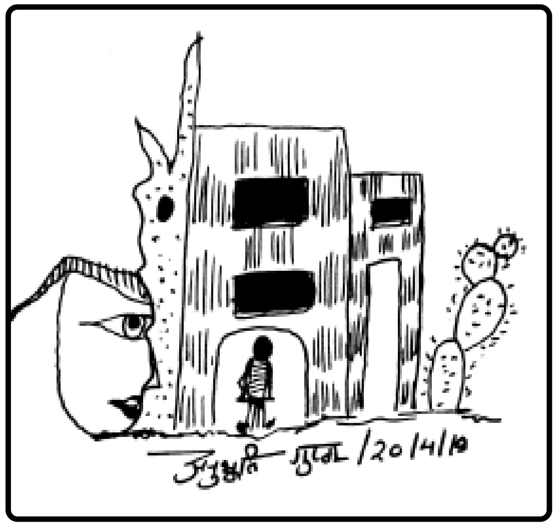

आयोजकों द्वारा पिटाई करने तथा सेक्स स्कैंडल के आरोपी बाबा के द्वारा स्थानीय लोगों से धन की लूट की शिकायत की. पुलिस ने शैलेश कुमार का माइक उतारा और शैलेश कुमार को कोतवाली में आकर रिपोर्ट दर्ज कराने की हिदायत दी. साथ ही शैलेश कुमार और उनके साथियों को उनके घर की ओर रवाना कर दिया.

अगली सुबह के अख़बार शैलेश कुमार के पर्चे के मुद्दे, उनका विरोध प्रदर्शन, विरोध कर रहे शैलेश कुमार के कार्यकर्ताओं की पिटाई, कथावाचक आनंद देव के सेक्स स्कैंडल के किस्सों से भरे पड़े थे. लोग आनंद देव की करतूतों की निंदा करते हुए उसके लिए थू-थू कर रहे थे. कुछ संगठनों ने उसके विरोध में प्रदर्शन भी किये. बहुत लोगों ने अब से उसकी कथा न सुनने का निर्णय लिया. पर तीसरे दिन की कथा श्रवण के लिए दोपहर में लोग नहीं असंख्य भेड़ें कथा-पंडाल की ओर जा रही थीं. भेड़ें नीचे सिर किये हुए, विचारशून्य होकर एक के पीछे एक चली जा रही थीं. पहले सड़क और फिर कथा-पंडाल भेड़ों से भर गया. आसमान भ्रम की हवाओं से भर गया था और दिशाएं मूर्खताओं से परिपूर्ण थीं और कहने को यहां ज्ञान की वर्षा हो रही थी.

महात्मा बाड़े के पीछे,
टीचर्स कॉलोनी,
अशोक नगर (म. प्र.)-४७३३३१.
मो. : ९९२६६२५८८६
ईमेल : srijanpaksh@gmail.com

बिला वजह

डॉ. अशोक गुजराती

२६ जुलाई. महाराष्ट्र के अकोला ज़िले के अकोट क़स्बे में. एम.एस-सी., एम. ए., पी-एच. डी. (हिंदी), डी. आर. एल. (रूसी), डी. डी. ई. (दूर शिक्षा).
: पुरस्कार :
'बाबा आमटे : ख़ुशबू का अहसास' महाराष्ट्र हिंदी साहित्य अकादमी से पुरस्कृत; 'अंगुलीहीन हथली' - कहानी संग्रह- केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा पुरस्कृत; 'पंछी-सी उड़ान' - बाल कथा संग्रह- महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी से पुरस्कृत; 'ख़ुशी के दीये' -बाल कथा संग्रह- को दिव्य रजत अलंकरण और कहानी 'भगदड़' को कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार.
: प्रकाशन :
'ख़ुशबू का अहसास' (बाबा आमटे की औपन्यासिक जीवनी–२०१०), 'ये नहीं कि ग़म नहीं' (कहानी संग्रह –२०१६), 'बीर-बहूटी' (नाटक -२०१८), 'उजाले की मौत' (लघुकथा संग्रह - २०१९) 'सार्थ' (आलेख संग्रह - २०१२), 'तुम क्या जानो' (लघुकथा संग्रह - २००८), 'अंदाज़ नया' (लघुकथा संग्रह –२०१६), 'व्यंग्य के रंग' (व्यंग्य संग्रह -२०११), 'पंछी-सी उड़ान' (बालकथा संग्रह - १९९४) 'अंगुलीहीन हथेली' (कहानी संग्रह - १९९०), 'सौर जगत का एक बंजारा (लेख संग्रह –१९९६), 'चहबच्चे' (व्यंग्य संग्रह -२०१२), ओ. हेनरी की कहानियां (अनुवाद -१९९०), 'जंगल में चुनाव' (किशोर उपन्यास - १९९४), 'विज्ञानः हंसते-हंसाते' खंड-१ व २ (बालोपयोगी -१९९५), 'सृष्टि की रचना,' 'कालू का कमाल' (बालकथा संग्रह –१९९१), 'लालची भालू' (बालकथा संग्रह - १९९६), 'ख़ुशी के दीये' (बालकथा संग्रह -२००८) और प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में ६५० से ज़्यादा रचनाएं.
शीघ्र प्रकाश्यः 'कहानी में प्रेम' (आलोचना), 'उठे हुए हाथ' (कहानी संग्रह), 'नायाब' (कविता संग्रह) 'बचपन' (बाल-साहित्य) और 'लड़की' (अनुवाद) तथा 'चिंतना' (विवेचना).
संप्रति : स्वतंत्र लेखन.

उसके बड़े भाई का फ़ोन आया — 'आलोक नहीं रहा...' विशद के मुंह से एक शब्द नहीं निकला. उसकी मानसिक स्थिति आश्चर्य एवं उदासी में कुछ ऐसी विलय हुई कि वह अबोला मोबाइल को ताकता रह गया. ज़रा संतुलित होकर वह 'कब... कैसे...' जैसे प्रश्न पूछने के लिए स्वयं को तैयार कर पाता कि फ़ोन बंद हो गया.

उसने पत्नी को पुकारा — 'मही... महिका...'

महिका के आते ही वह उतावला हो गया — 'मुझे सुबह जाना पड़ेगा. आलोक चला गया...'

'क्या? आलोक भाई...'

'हां मही... मुझसे दो-एक साल बड़ा रहा होगा.'

'यह तो बहुत बुरा हुआ. शायद पचपन के आसपास रहे होंगे.'

'हां, यही कोई...' उसने अपना वाक्य अधूरा छोड़ दिया और भीतर के कमरे की ओर बढ़ा. महिका भी उसके पीछे-पीछे आ गयी. उसने आते ही एकाध दिन के सफ़र के हिसाब से बैग निकाला. तब तक विशद अपने दो ड्रेस चुनकर बिस्तर पर रख चुका था. मौक़े के अनुसार कुर्ता-पाजामा और अतिरिक्त पैंट-टी शर्ट. पलक झपकते कपड़ों की पैकिंग आवश्यक अन्य सामग्री के साथ हो गयी.

किसी तरह खाना निपटाकर वे थोड़ा जल्द ही सोने चले गये. लेट तो गये पर विशद के आंखों में नींद कहां थी. करवटें बदलता रहा और आलोक और अपने संबंधों के बारे में सोचता रहा...

उसे आलोक कभी पसंद नहीं आया, उसकी कारगुज़ारियों के कारण. फिर भी कुछ ऐसा था कि वह उसे कभी नकार नहीं

सका. बल्कि कह सकते हैं कि उसके संग दोस्ती निबाहता ही चला गया. इसकी कोई तो वजह रही होगी. या तो वह खुद दुस्साहसों के प्रति रुझान पालता रहा होगा अथवा रिश्तेदार होने से उसे स्वीकारता रहा होगा.

रिश्तेदार! क्या रिश्ता था उसका आलोक के साथ... यही न कि उसकी कोई बुआ का आलोक के पिता से विवाह हुआ था. उस बुआ का जल्द ही देहांत हो गया था. कोई संतान भी नहीं थी. आलोक के पिता जी ने दूसरी शादी कर ली थी. कालांतर में उनके परिवार में तीन बेटे आये. आलोक मंझला था. इतने पुराने बीत गये रिश्ते की कोई संलग्नता भी नहीं रह गयी थी.

तब ऐसा क्या था कि वे आपस में जुड़ गये?..

पता नहीं पर जुड़ गये. दसवीं पास करने के बाद विशद कॉलेज़ में एडमीशन लेने गया था. और-और छात्र फ़ीस भरने हेतु कतार में खड़े थे. उसके पीछे खड़े लड़के ने उससे बातचीत शुरू कर दी. लंबी लाइन ने उनके वार्तालाप को दीर्घता दी. उनको ताज्जुब भरी खुशी हुई कि वे परस्पर दूर के रिश्तेदार हैं. कहीं निकटता की अनुभूति हुई. दाख़िले की औपचारिकताएं पूरी करते-करते वे दोनों काफ़ी घनिष्ट हो चुके थे.

विशद ने कॉलेज़ रोड पर ही एक कमरा किराये से ले रखा था. आलोक के पास कोई ठिकाना उस वक़्त नहीं था. विशद ने ही उससे कहा कि उसके छोटे-से कमरे को वे शेयर कर सकते हैं. एक महीने क़िराया विशद देगा और एक महीने आलोक. आलोक रहने आ गया. आलोक जलगांव रहता था, जो कि खामगांव से लगभग दो घंटे की दूरी पर था. विशद का गांव शेगांव महज़ आध घंटे के फ़ासले पर था. दोनों को कोई दिक़्कत नहीं हुई.

एक रविवार को आलोक ने उसे कॉलेज़ चलने को कहा. कॉलेज़ में उस दिन कोई प्रतियोगिता परीक्षा चल रही थी. विशद ने पूछा, 'आज वहां जाकर क्या करेंगे. ऑफ़िस भी बंद ही होगा.'

आलोक ने ज़ोर देकर कहा, 'तू चल तो... एक काम है.'

चूंकि आलोक की साइकिल के टायर-ट्यूब ख़राब हो गये थे, वे दोनों विशद की साइकिल पर डबल सीट निकल पड़े. साइकिल स्टैंड सुनसान पड़ा था. स्टैंड वाला उस दिन आया ही नहीं होगा या कहीं चाय-वाय पीने चला गया होगा. आलोक ने मौक़ा ताड़कर वहां खड़ी एक नयी-सी साइकिल का अपने पास की चाबी से ताला खोला, उस पर सवार होकर विशद से कहा, 'चल, वापिस चलते हैं.'

विशद कुछ समझ पाये, इससे पूर्व ही यह सब हो गया. वह आलोक के पीछे-पीछे चलता चला गया. कमरे पर आने के पश्चात आलोक ने उस साइकिल के ट्यूब-टायर, जो नये ही थे, निकाले और उस केवल रिंग वाली साइकिल को लेकर कहीं ग़ायब हो गया. थोड़ी देर बाद जब वह पैदल लौट कर आया तो विशद जान गया कि उसने उस साइकिल को इधर-उधर कहीं फेंक दिया होगा. अब आलोक ने अपनी साइकिल में वे नये ट्यूब-टायर डाल लिये और पुराने फटे हुए कूड़े के हवाले कर दिये. विशद बस इतनी ही प्रतिक्रिया दे पाया कि 'कमाल के आदमी हो तुम!'

असल में आलोक का इस कॉलेज़ में यह दूसरा साल था. प्रि-यूनिवर्सिटी में उसे केमेस्ट्री में कंपार्टमेंट मिला था इसलिए फ़र्स्ट इयर में प्रवेश तो मिल गया पर उसे सप्लिमेंट्री पास करना ज़रूरी था. अक्तूबर में उसे यह परीक्षा देनी थी. उससे पहले ही विशद को उसकी चोरी-चकारी और बेईमानी के अच्छे-ख़ासे अनुभव मिलते रहे.

उनके पड़ोस के रूम का छात्र घर गया हुआ था. एक शाम को आलोक ने उसकी खिड़की पर लगा हुआ प्लाइ-वुड का तख़्ता उखाड़ा और भीतर घुस गया. चाय बनाने के बर्तन, कपड़े इत्यादि समेट कर बाहर आया और तख़्ता पुनः जगह पर ठोक दिया. विशद मूक दर्शक बना उसका यह कारनामा देखता रह गया. तत्पश्चात उसने उसे नसीहत भी देनी चाही कि यह कोई अच्छी आदत नहीं है. आलोक ने बे–परवाही से अपने कंधे उचका दिये. कुछ ही देर बाद वह उन चुरायी हुई चीज़ों को लेकर अपने गांव रवाना हो गया.

उस रूम के लड़के ने वापिस आकर पुलिस में शिकायत कर दी. पुलिस ने विशद से पूछताछ की. अंदर से तो वह पानी-पानी हुआ जा रहा था. उसने भले ही कुछ न किया हो पर वह प्रत्यक्ष-दर्शी तो था ही. वह प्रयत्न करके अनजान बना रहा. पुलिस को कोई सुराग़ नहीं मिला. वैसे भी ऐसी छुट-पुट चोरी में वे अपना समय क्यों बर्बाद करते. उस लड़के ने अपना बचा-खुचा सामान उठाया तथा कहीं और रहने चला गया.

ऐसा नहीं कि आलोक की चोरी करने की कोई मजबूरी रही हो. यह उसका शौक़ माना जा सकता है. उसके पिता की मृत्यु हो चुकी थी लेकिन गांव में उनकी खेती थी. बड़ा भाई खेती भी देख रहा था और प्राइवेट एम. ए. की परीक्षा भी दे रहा था. वह आलोक के बिलकुल विपरीत एकदम सज्जन था. आलोक की क़द-काठी बहुत मज़बूत थी. घनी बरौनियों में छिपी छोटी-छोटी एवं तीक्ष्ण आंखें, जो उसके काइयांपन को उजागर करती थीं. उसकी सेहत का राज़ शायद उसकी खुराक में निहित था, जो निश्चित ही विशद से दुगनी थी.

छुट्टियों में एक दिन विशद के घर उसके क़िराये पर लिये कमरे का मालिक आ पहुंचा. उसने बताया कि दो माह का क़िराया बक़ाया है. विशद के बाऊजी ने उससे पूछा. उसने उसके-आलोक के मध्य हुए क़रार की जानकारी दी. चार में से दो का क़िराया उसने चुकता कर दिया था. मालिक का कहना था कि उसने तो विशद को कमरा दिया था, वह किसी आलोक को नहीं जानता. यानी आलोक ने विशद से झूठ बोला था कि वह अपने हिस्से का भाड़ा दे रहा है. विशद के बाऊजी ने शेष रक़म दे दी. विशद को कमरा छोड़कर रोज़ उसके गांव शेगांव से बस द्वारा अप डॉउन करने का आदेश भी दे दिया.

बावजूद इसके उनकी दोस्ती पर कोई आंच नहीं आयी. वे कॉलेज़ में मिलते रहे. विशद ने उसे अपनी तरह से समझाने की कोशिश भी की. बड़ा कठिन है इसकी गहराई को उकेरना लेकिन विशद ने उससे मुंह नहीं मोड़ा. संभवतः यह उसकी भीरु प्रवृत्ति का परिचायक हो या समझौता करते रहने का स्वभाव.

आप ओखली में सर देंगे तो भुगतना पड़ेगा ही...

अक्तूबर आ गया. दीपावली का अवकाश. उससे पहले ही आलोक ने विशद से अनुरोध किया — 'तेरी कैमेस्ट्री में मास्टरी है. मेरा वही विषय लटक गया है. अगर तू ज़रा मदद कर दे तो मैं पास हो जाऊंगा.'

'मुझे क्या करना होगा.' भोलेराम जी फिर उसके जाल में फंसने को उतारू हो गये.

आलोक ने पत्ते नहीं खोले — 'तू उस दिन आ जाना. मैं सब बता दूंगा.'

करना यह था कि पेपर शुरू होने के निर्धारित एक घंटे बाद आलोक बाहर आयेगा. कॉलेज़ परिसर में टट्टे से बने पेशाबघर में वह एक काग़ज़ छोड़ जायेगा, जिस पर प्रश्न लिखे होंगे. विशद को उस काग़ज़ को वहां से उठाकर किसी एकांतिक स्थान पर उनके जवाब संक्षेप व बारीक अक्षरों में अलग काग़ज़ पर लिखकर उसे वहीं बांस के पीछे खोंस देना था. यह विशद के लिए बायें हाथ का खेल था. उसने अनिच्छा से सही, कर दिया.

आलोक का वह पेपर निकल गया. इतना ही नहीं उसने पता नहीं कैसे प्रथम वर्ष की परीक्षा भी तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण कर ली. विशद के प्रि-यूनिवर्सिटी के इम्तहान में पचपन प्रतिशत अंक आये थे. उसके सामने अब फ़र्स्ट इयर की विशेषक परीक्षा थी, जो उसके इंज़ीनियरिंग में प्रवेश को तय करेगी. इसके लिए वह खामगांव में ही रहकर कोचिंग वग़ैरह लेकर पढ़ाई करना चाहता था. उसके बाऊजी ने उसे इसके लिए अनुमति दे दी.

वह यहां-वहां कमरा तलाशता रहा. मिल नहीं रहा था. आलोक ने तब तक कमरा क़िराये पर ले लिया था. उसने विशद से साथ रहने को कहा. विशद असमंजस में था. उसने इस बार आलोक से साफ़-साफ़ वचन ले लिया कि वह ऐसे-वैसे कोई काम नहीं करेगा. उसका यह निर्णायक साल है. उसे रात-दिन पढ़ाई करनी है. आलोक ने उससे वादा किया कि वह उसे तनिक भी परेशान नहीं करेगा. मालूम नहीं विशद ने फिर यह बेवक़ूफ़ी क्यों कर ली. वह भूल गया कि कुत्ते की दुम टेढ़ी है तो टेढ़ी ही रहेगी.

उनके कला, विज्ञान, वाणिज्य महाविद्यालय के चुनाव घोषित हुए. आलोक कक्षा प्रतिनिधि के पद के लिए खड़ा हो गया. मज़े की बात यह कि चुनकर भी आ गया. विशद को भी इस कारण गौरव एवं आनंद हुआ, हालांकि उसकी इसमें बहुत अधिक रुचि नहीं थी. उसे लगा कि शायद अब आलोक कुछ ज़िम्मेदारी भरा बर्ताव करेगा.

अब कॉलेज़ के जीएस-गैदरिंग सेक्रेटरी का चुनाव होना था. इसके लिए सारे चुन कर आये सी आर कक्षा प्रतिनिधियों को मतदान करना था. जीएस के दो प्रत्याशी थे-माहेश्वरी और पाटिल. माहेश्वरी ने एक ख़ाली पड़े बंगले में सभी कक्षा प्रतिनिधियों को मतदान से पांच दिन पहले रहने-खाने हेतु आमंत्रित किया. वैसे ही, जैसे आजकल सारे विधायकों को किसी रिज़ॉर्ट में लेकर चले जाते हैं ताकि दूसरा दल उनको लालच देकर अपनी ओर खींच न ले.

अर्थात् यह सब विशद को आलोक के माध्यम से

पता चला. आलोक माहेश्वरी के ठिये पर चला गया. वह अचानक महत्वपूर्ण हो गया था क्योंकि उसके गांव के दो और छात्र सी आर चुने गये थे, जो उसके कहने में थे. उसके पास कुल तीन वोट थे, जो निश्चित ही बाज़ी पलट सकते थे. एक बार विशद भी उससे मिलने वहां गया. देखा तो आलोक वहां मौज कर रहा था. जो चाहो खाओ-पीओ. उसका रुतबा एकाएक तीन मतों के कारण बहुत अधिक बढ़ गया था. विशद ने सोचा, चलो अच्छा है कि उसका दोस्त-भाई इतना अज़ीम हो गया है.

अगले दिन रात में आलोक कमरे पर आया. उसने विशद से आग्रह किया- 'विशू, मेरे साथ चल. तुझे एक अजूबा दिखाना है.'

विशद ने सहज ही पूछा, 'कौन-सा...? और तुम वहां से कैसे चले आये?'

आलोक ने होंठों पर उंगली रख कोई सवाल न करने का संकेत किया — 'चल तो मेरे साथ. सब पता चल जायेगा.'

विशद अनमना-सा उसके संग हो लिया. आलोक उसे ले गया जीएस के लिए खड़े दूसरे उम्मीदवार पाटिल के घर. वहां मज़मा लगा हुआ था. कई कार्यकर्ता और सी आर वहां उपस्थित थे. छोटी-मोटी पार्टी चल रही थी. आलोक को देखते ही उसका भरपूर स्वागत किया गया. खाने-पीने के साथ बातचीत चलती रही. विशद ख़ामोश श्रोता बना रहा. वहां से बाहर आये तो उसकी ज़ुबान खुली.

'भाई, ये तुम क्या कर रहे हो. तीन दिनों से वहां बने हुए थे और अब...'

'विशू, मैं पहले से इनके ही साथ हूं. मुफ़्त में वहां मेहमान-नवाज़ी हो रही है तो मैं क्यों मना करू? फोकट का चंदन घिस मेरे लल्लू!'

विशद कुछ आक्रोशित हुआ — 'क्या करूं... मतलब... तुम उनको धोखा दोगे. वहां गये ही क्यों... और गये तो रुके क्यों... उनको साफ़ कह देते कि...'

आलोक ने चुप्पी साध ली. विशद को लगा कि वह होश में आ गया है.

लेकिन नहीं. सुबह तैयार होकर वह फिर वहां रहने चला गया. विशद ने सोचा कि मुझे क्या करना है. वह चाहे जो करे. उसे उसके इस अंदाज़ में कुछ-कुछ साहसिक कारनामे जैसा महसूस हुआ. जो कि थी तो यह सीधी बेवफ़ाई. विशद कर भी क्या सकता था — जाकर बता देता कि आलोक दूसरे दल से मिला हुआ है. यह तो संभव ही नहीं था.

हुआ वही, जैसा आलोक ने खेल रचा था. उसके पास तीन वोट थे. पाटिल, जिसके घर वह विशद को एक रात ले गया था, चुन कर आ गया.

घमासान मच गया. मत-गणना का नतीज़ा सामने आते ही माहेश्वरी तथा उसके सहयोगियों को मालूम होना ही था कि आलोक ने उनके साथ बेईमानी की है. उस अफ़रा-तफ़री में मार-पीट का माहौल बन गया. माहेश्वरी के ख़ासमख़ास विशद के क्लास के राधू ने दौड़कर आलोक का कॉलर पकड़ लिया. उसकी गालियों के उत्तर में आलोक ने कुछ कहा. चूंकि विशद वहां से काफ़ी दूर था, सुन नहीं पाया. तब तक और दो-चार लड़कों ने आलोक को घेर लिया. दो-चार घूंसे भी पड़े हों शायद. आलोक को इसका पहले से अंदाज़ा रहा होगा. उसने स्वयं को बचाया ही, पाटिल के लड़के भी उसकी ढाल बन गये.

विशद ने सोचा, चलो — जो भी, जैसा भी था-निपट गया. लेकिन नहीं... दो दिनों बाद उसके गांव के एक लड़के के साथ तीन हट्टे-कट्टे लड़के नमूदार हुए. विशद कमरे पर अकेला था. उन्होंने किसी प्रकार की हाथापाई तो उसके संग नहीं की पर धमकी अवश्य दी. उसके गांव का लड़का बोला, 'तूने जो चुनाव में तिकड़म चली है, तेरे को भारी पड़ेगी...'

विशद चौंका — तिकड़म? मैंने? मैंने क्या किया है, भाई...?'

वह ग़ुस्से में आ गया — 'आलोक ने खुद राधू से बताया कि उसने अपने भाई विशद यानी तूने जैसा कहा, वैसा किया.'

'मेरा यक़ीन करो, मैंने ऐसा कुछ कभी नहीं कहा. मैं तो पाटिल को ठीक से जानता भी नहीं.'

'जाने दे... तेरा वो शेगांव में दोस्त है न ज़ोरावर, हमको पता है. पर... तूने अच्छा नहीं किया.'

वे तो तुरत-फुरत लौट गये लेकिन विशद के समक्ष दो बड़े प्रश्न-चिह्न छोड़ गये. यह ज़ोरावर कबड्डी का उत्कृष्ट खिलाड़ी था. स्कूल का विशद का सहपाठी होने से विशद की उससे थोड़ी-बहुत मित्रता थी. न वह गुंडा था और न ही उसके बल पर विशद ने कभी कुछ अवांछित किया था. हां,

उसके कारण विशद का परोक्ष फ़ायदा यह हुआ कि अगले मात्र उसको धमकाकर चलते बने.

लेकिन दूसरा मुद्दा उसके लिए उलझन भरा था. आलोक ने उसे व्यर्थ में बदनाम किया था. मान लिया कि उसने सुरक्षा के लिहाज़ से उस वक़्त जो सूझा, कह दिया होगा. लेकिन था तो ग़लत ही. स्वयं के त्राण हेतु दूसरे पर आरोप लगाना... विशद बेहद संवेदनशील था लेकिन साहसहीन. उसकी हिम्मत नहीं हुई कि इस मामले में आलोक से बहस करे. वैसे भी आलोक इस सच्चाई को क़बूल करेगा ही नहीं. उसने अंततः यह निर्णय लिया कि वह अपने गांव जाकर शांति से इस पूरे प्रकरण पर विचार करेगा कि उसे आगे क्या क़दम उठाना है. यहां उसके साथ किसी अप्रत्याशित घटना की भी संभावना थी.

वह उसी घड़ी तैयार हुआ और बस से गांव निकल गया. अब उसके नज़दीक बहाना भी था कि बाऊजी ने घर पर ही रहकर पढ़ाई करने के लिए जोर दिया है. उसने यही किया. दूसरे दिन जाकर अपना शेष सामान उठाया और आलोक का रूम छोड़ दिया.

कॉलेज़ तो वह जा ही रहा था. सारा कुछ सामान्य चल रहा था. फिर आयी कॉलेज़ की गैदरिंग. कार्यक्रम देखने में उसकी दिलचस्पी थी. कुछ देर बाद उसके दोस्त ने कैंटीन में चाय पीने की इच्छा प्रकट की. वे गये. वहां कॉउंटर पर भीड़ लगी हुई थी. विशद को क्या सूझा कि उसने दोस्त से कहा कि मैं चाय के दो कप ले आता हूं. वह लड़कों के बीच से घुस कर कॉउंटर की ओर बढ़ा. तभी आगे खड़े राधू ने 'मेरे को साले की गाली देता है' कहकर उस पर हमला कर दिया. हुआ कुछ विशेष नहीं क्योंकि विशद के दोस्त और अन्य छात्रों ने उसे बचा लिया. बहरहाल, वह समझ गया कि राधू ने उसके साथ चुनाव के हार की खुन्नस निकालनी चाही थी.

विशद ने शेगांव से खामगांव जाने-आने का क्रम जारी रखा. कॉलेज़ के अलावा वहां के ट्यूशन ख़त्म कर शाम को लौट आता. यदा-कदा आलोक से सामना हुआ भी. वह हाय-हैलो तक सीमित रहा. उसे यह नयी जीवन-शैली रास आ गयी. घर से टिफ़िन ले जाने तथा रात में अपने रसोई में खाने का उसकी सेहत पर भी वाजिब असर पड़ा. बेकार के अप-प्रसंगों से भी दूरी बन गयी थी. किताबों-नोट्स को छान कर शांत चित्त से मनन करने का उसे सुयोग मिल गया था.

परीक्षाएं आयीं. आलोक की पहले थीं. उसे पता चला कि उसे कॉपी करते हुए पकड़ा गया. वह तीन साल के लिए रस्टिकेट हो गया. विशद के पेपर्स बहुत अच्छे गये. उसे उम्मीद थी कि वह साठ प्रतिशत तक अर्जित कर लेगा.

उसका अनुमान ग़लत निकला. उसे चौसठ प्रतिशत अंक हासिल हुए. उसकी आगे की राह आसान हो गयी. उसे 'बिट्स' में सरलता से प्रवेश मिल गया. वहां भी उसने जम कर परिश्रम किया. इसका फल उसे मिला भी. उसका अंतिम वर्ष में कैंपस इंटरव्यू में एक बड़ी कंपनी ने चयन कर लिया. उसने उसे नकार दिया. शेगांव में ही उसने अपनी कैमिकल इंडस्ट्री लगायी. उत्पादन था — प्लास्टर ऑफ़ पेरिस. उसका मंतव्य यही था कि मां-बाऊजी के साथ रहकर वह अपना अध्यव्यसाय स्थापित करेगा. वह इसमें सफल भी होता रहा.

एक दिन आलोक उससे मिलने आया. रस्टिकेट होने के बाद उसने प्राइवेट बी. ए. कर लिया था. उसे पोस्ट ऑफ़िस में नौकरी भी मिल गयी थी. वह विशद को अपने विवाह के लिए निमंत्रित करने आया था. उसके प्रायः विनय भरे अनुरोध के कारण विशद स्वयं को ज़्यादा निरपेक्ष नहीं रख पाया. उसने विचार किया कि तब जवानी के जोश में वह अवैध लफड़े करता रहा था. अब सुधर गया होगा.

विशद अत्यंत क्षमाशील था. वह आलोक की शादी में गया. इससे उनके संबंध पूर्ववत नज़दीक तो जा ही पहुंचे.

जब विशद का विवाह निश्चित हुआ, उसने आलोक को भी कार्ड भेज दिया. आलोक अपनी पत्नी के संग आकर दो दिन रुका. संबंध कुछ प्रगाढ़ होने ही थे.

उसे उसके-आलोक के उभय रिश्तेदारों से कई क़िस्से सुनने को मिलते रहे. पोस्ट ऑफ़िस में वह अभी अस्थायी ही था कि किसी घोटाले के सबब निलंबित कर दिया गया. फिर वह पंचायत समिति में लग गया. यहां उसे ऊपरी कमाई का ज़रिया मिल गया था. तब आते रहे उसके रिश्वतख़ोरी, धोखाघड़ी में लिप्त होने और उससे उपजे पारिवारिक क्लेश के समाचार. उसके बड़े भाई, जो एक प्रख्यात हाईस्कूल के हेडमास्टर बन गये थे, उनसे भी उसका अलगाव पता चला.

वह साल-दो साल में विशद से मिलने आता रहता था. विशद के यहां उसका आतिथ्य भी पहले-सा ही होता

लघुकथा

अब तस्वीर ही पिता

सेवा सदन प्रसाद

जिस गांव में कभी सरकारी गाड़ी नहीं आयी थी, कभी किसी मंत्री का दौरा नहीं हुआ था, आज उसी गांव में पूरा हिंदुस्तान उमड़ पड़ा.

विक्रम सिंह कभी इसी गांव से तिरंगा लहराते हुए सेना में भर्ती होने के लिए गया था और भर्ती भी हो गया. पर किसे पता था कि शहादत के बाद उसका पार्थिव शरीर इसी तिरंगे में लिपटा कर लाया जायेगा. ज्योंहि शहीद विक्रम सिंह के पार्थिव शरीर को धरती मां की गोद में उतारा गया तो शहीद विक्रम सिंह अमर रहें, हिंदुस्तान ज़िंदाबाद के नारे गूंज उठे. लोगों के नयनों में नीर, मन में पीर पर चेहरे पे वीर के भाव मौजूद दिखे. पत्नी की आंखों के आंसू को पोंछने के लिए करोड़ों, हाथ बढ़े तो आंसू ही सूख गये. पहली बार उसका पति हिंदुस्तान का लाडला लगा. तब हंसी एवं गम की चंद बूंदें निकल पड़ीं. वास्तविकता से अनभिज्ञ पांच वर्ष का बालक भीड़ देख कर घबरा गया. भीड़ में पिता को ढूढ़ने लगा. उसे पता है कि मां की आंखों में जब भी आंसू बहते तो पिताजी ही पोंछते हैं. फिर आज पिताजी किधर हैं? और बालक रोने लगा. बेटे को रोता देख मां भी बिलख पड़ी. तभी एक जवान ने आगे बढ़कर बच्चे को गोद में ले लिया.

उसने बालक को भीड़ से अलग ले जाकर घास जैसी चादर पर बिठा दिया और पॉकेट से उसके पिता की तस्वीर निकाल कर पकड़ा दी. तुरंत बालक के आंसू थम गये. वह पिताजी की तस्वीर को चूमकर नाच उठा.

६०१, महावीर दर्शन सोसायटी, प्लॉट नं. ११ सी, सेक्टर-२०, खारघर, नवी मुंबई-४१०२१०. मो. : ९६१९०२५०९४

रहता था. विशद उसके बारे में सब जानते-बूझते उसका निश्चेष्ट मित्र बना रहा. उसने मान लिया था कि यह व्यक्ति किसी भी समझाइश से परे है. इसको सही राह पर नहीं लाया जा सकता. इस सच्चाई से अवगत होते हुए भी अंत तक विशद के हृदय का एक कोना उसके वास्ते हमेशा कोमल बना रहा.

जब विशद आलोक के अंतिम संस्कार में शामिल हुआ, वह भयंकर जानकारी आलोक के एक स्थानीय मित्र ने उसके साथ मंद स्वर में साझा की. बताया कि उसको एड्स हो गया था. इस विपत्ति ने उसके सभी आप्त-जनों को विचलित कर दिया था. किसी को बता भी नहीं सकते थे. पिछले छह महीनों से वे उसके इलाज में रात-दिन एक करते रहे. बड़े भैया ने संभाला. फिर भी आर्थिक रूप से तो टूटे ही, मानसिक आघात बर्दाश्त करना उनके लिए कठिन हो गया था.

विशद सोच में पड़ गया कि आलोक किस मिट्टी का बना था कि सभ्य-सुशील संस्कारों के रंग उस पर कभी चढ़ ही नहीं पाये. जैसे वह दुष्कर्मों के लिए ही पैदा हुआ और उनको आजीवन लपेटे ही रहा. अपने कर्मों से दूसरों को व्यथित करता रहा. क्या उसे कभी उसके दिमाग़ ने झकझोरा नहीं; क्या उसे अपने-आप पर कभी क्रोध नहीं आया; ख़ुद के प्रति अंतरंग क्षणों में जुगुप्सा नहीं अनुभूत हुई...? जानवर भी अपने बुरे काम पर शर्मिंदा हो जाते हैं. कैसा विचित्र इन्सान था वह...?

विशद को उसकी इस परिणति पर बेहद कोफ़्त हुई; क्षोभ हुआ; दुख भी हुआ. वह जब आलोक के जीते-जी अकर्मण्य बने रहने को विवश रहा, अब क्या कर सकता था...? उसने उसके पार्थिव शरीर को हाथ जोड़कर आख़िरी विदाई दी.

बी-४०, एफ़-१,
दिलशाद कॉलोनी,
दिल्ली-११० ०९५.
मो. : ९९७१७४४१६४.
ईमेल : ashokgujarati07@gmail.com

ज़हर का प्याला

डॉ. उमेश कुमार सिंह

जन्म : रीवा (म. प्र.).

: प्रकाशन :
'कबीर का काव्य और लोकजीवन', 'पाताल विजय' काव्य संकलन, 'भारतीय काव्य शास्त्र', 'पाश्चात्य काव्य शास्त्र', 'हिंदी विकास और परंपरा', 'संरचना और संवेदना', 'आधुनिकता और अभिव्यंजना', 'हिंदी साहित्य का इतिहास एक पुनरावलोकन', 'वीर सावरकर', 'संतों की सांस्कृतिक चेतना', 'इक्कीसवीं सदी का भारत'.

: संपादित पत्रिकाएं :
'युगदृष्टा सावरकर', 'प्रेरणा प्रवाह', 'शोध प्रविधि : भाषा एवं साहित्य', 'राष्ट्रनिर्माण में साहित्य की भूमिका', 'राष्ट्रनिर्माण में संतों की भूमिका', 'हिंदी व्याकरण और वर्तनी सुधार', 'जबलपुर का साहित्यिक गज़ेटियर', 'राष्ट्र की लोकाभिव्यक्ति, 'डाइजेस्ट', 'गुरुभक्त सिंह भक्त समग्र' भाग- एक एवं दो, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित आलेख : वीणा, अमृत संदेश, गगनांचल, साहित्य अमृत, साहित्य परिक्रमा, सृजन की आंच, अक्षरा, राष्ट्रधर्म, पुस्तक वार्ता, महात्मा गांधी हिंदी विश्वविद्यालय-वर्धा, मधुमती, अन्वीक्षा.
प्रसारण : आकाशवाणी रीवा एवं दूरदर्शन-भोपाल में समय-समय पर वार्ताएं प्रसारित. सम्मेलन : विश्व हिंदी सम्मेलन-न्यूयॉर्क २०१७, भोपाल-२०१५ व मॉरीशस-२०१८.
सम्मान : वर्ष २०१६ में हिंदी कश्मीरी संगम-जम्मू कश्मीर एवं श्री वीरेंद्र केशव साहित्य परिषद-टीकमगढ़ द्वारा सम्मानित (२०१७).

राजमहलों के विशाल खंडहर शताब्दियों से न केवल अपनी गाथा आगोश में छुपाये हुए हैं बल्कि समय-समय पर उसी अपनी गाथा को सुनाते आ रहे हैं. मेरे पूर्वजों की गाथाएं आज भी उतनी ही चाव और उत्सुकता के साथ सुनी-सुनाई जाती हैं. प्रताप वंश के सूर्य महल की गाथाओं में से एक की मैं भी साक्षी रही हूं. उसकी एक गाथा का अंग हूं. पत्थरों की मज़बूत दीवालों से बने विशाल सूर्य महल के खुदावदार मोटे खंभों की तरह इस वंश की धरोहर भी बड़ी ही जटिल है. यह कभी तो अनकही शौर्य गाथाओं और उत्सर्ग का साक्षात्कार कराती हैं तो कभी गहरे अवसाद की ओर ढकेलती हैं. इस राजमहल ने विशाल खिड़कियों से अरावली की शिखर चोटियों को तो अपने राजाओं को दिखाया किंतु राजमहलों में पल रहीं ललनाओं/ महारानियों की आकांक्षाओं को कभी समझने का अवसर नहीं दिया. सूर्य की सुनहरी किरणों से बाहर का दृश्य तो आलोकित होता है किंतु चार-दीवारियों के अंदर पलती इच्छाओं को कभी आलोक नहीं मिलता.

महल की भूमि पर रंग-बिरंगा सुंदर कालीन है, कालीन के बीच में राजगद्दी है. ऊंची गद्दी के चमकते हुए मखमली पोश, गद्दी के चारों ओर चार गंगा-जमुनी चोबों पर मखमली चंदवा है. चंदवे पर भी जरदोजी का काम है और चंदवे के चारों तरफ़ बादले की सुनहरी झालर लटक रही है किंतु अंदर जिन तंतुओं ने मकड़ज़ाल बना रखा है उसे देखने को राज-दरबार को अवकाश नहीं.

मैं इस राज दरबार के एक-एक कोने से, उसके रंग-ढंग से बचपन से ही परिचित रही हूं. आज फिर गंभीर विमर्श हेतु राजदरबार लगा है. आज राजगद्दी पर ४५ वर्षीय गेहुएं रंग, ऊंचे गठे शरीर के भीम सिंह मेरे पिता जी बैठे हैं. बड़ी-बड़ी आंखें, मूंछें तथा दाढ़ी के साथ ललाट पर केशर का त्रिपुंड लगा है. पगड़ी के पीछे और दोनों बगलों में बालों के लंबे पट्टे दिखाई देते हैं. मंदीप पर सामने रत्नजटित

तथा मोती-पन्ने और माणिक के लटकनों से युक्त सिरपेंच है और दाहिनी ओर सुनहरी तुर्रा. पिंडलियों तक लंबा सफ़ेद घेरदार जामा है. कमर में केशरी रंग का लड़ीदार दुपट्टा बंधा है, जिसके बायीं ओर रत्नजटित स्वर्ण की मूठ की तलवार और दाहिनी ओर ऐसी ही मूठ की कटार है. गले तथा भुजाओं पर स्वर्ण रत्नजटित आभूषण हैं.

भीम सिह की गद्दी के दाहिनी तरफ़ ऐसी ही थोड़ी-सी छोटी चांदबा विहीन एक गद्दी है, जिस पर २८ वर्षीय गेहुए रंग के ठिगने से किंतु मोटे शरीर के दौलतराव सिंधिया विराजे हैं, जिनकी छोटी-छोटी मूंछें गल-मुच्छ से भरी हैं. उनके शरीर पर मराठी अंगरखा और सिर पर मराठी पगड़ी है.

दरबार में भीम सिंह की गद्दी के बायीं ओर तीन छोटी गद्दियां हैं जिन पर सफ़ेद चादरें बिछी हैं. इनमें महाराज भीम सिंह के नायक तथा युवराज दौलत सिंह, ज्वान सिंह और अजीत सिंह बैठे हुए हैं. इन सभी का वर्ण गेहुंआ हैं, तीनों ऊंचे-पूरे शरीर के हैं. जहां दौलत सिंह मोटे हैं वहीं ज्वान सिंह तथा अजीत सिंह दुबले हैं. तीनों की वेशभूषा राजदरबारी है. इनके सिरों पर बसंती रंग की पगड़िया हैं.

मैंने कई दिनों से आज के इस दरबार के प्रयोजन के बारे में अपनी सहेलियों और अन्यों से कुछ-कुछ सुना था. शायद, शायद क्यों निश्चित रूप से मैं ही इस दरबार का हेतु थी. मेरी उम्र १६ साल की है. मुझे वैसे तो पिता जी और माता दोनों कृष्णा कह कर ही पुकारते हैं किंतु राज के बाहर मुझे कृष्णा कुमारी नाम से ही जाना जाता है. मेरी सुंदरता और मेरे बढ़ते यौवन ने मेरी ख्याति पड़ोसी राजाओं तक पहुंचा दी है. मैं अपनी १४-१५ साल की किशोरियों के साथ बसंती वस्त्र पहने राजदरबार की सारी षड़यंत्रकारी परिस्थिति से अनजान राजप्रासाद के नज़र बाग और हरी-भरी लताओं, पुष्पों से सज्जित, अनेक छोटे-छोटे पथ्तरों से निकलते झरने के बीच बसंतोत्सव का आनंद ले रही थी.

सहेलियां हंसी मज़ाक करती कह रही थीं, 'बाई साहिबा, यह होली हम लोग आप के साथ शायद अंतिम बार खेल रही हैं, फिर तो आप ससुराल की ही होली खेलेंगी.'

'तुम सब बहुत तंग करती हो.' कहती हुई मैं बार-बार संकोच में डूब जाती. तभी एक सखी पूछ उठती है, 'बाई साहिबा यह तो बताइए कि महाराजा मान सिंह पंसद हैं या जगत सिंह?' वास्तव में यही आज के दरबार का कारण भी था. मुझे पाने के लिए एक तरफ़ राजा मान सिंह थे तो दूसरी तरफ जगत सिंह. मैं सहेलियों को उत्तर देना नहीं चाहती थी किंतु जब उन्हें कुछ ज़्यादा ही उत्सुक देखा तो मेरे अंदर की पूरी गंभीरता अचानक बाहर आ गयी. सुनना ही चाहती हो तो सुनो, 'राजस्थान में रावलों की लाड़लियां राजनैतिक शतरंज की प्यादियां होती हैं. राजपूतानियों का विवाह और विवाह पश्चात जीवन इतिहास के पन्नों में अपनी गाथा गा रहा है, उसे हर कोई पढ़ सकता है. उसमें न हर्ष है न ही विषाद की जगह!'

तभी वहां पधारी मेरी प्रिय और अंतरंग सहेली ने मुझे एकांत में खींचते हुए बताना प्रारंभ किया कि महल में एक विचित्र प्रकार का सन्नाटा छाया है. भीम सिंह का सिर झुका हुआ है और उनके मुंह पर खिन्नता दिखायी देती है. सिंधिया उत्सुकता से भीम सिंह की ओर देख रहा है, किंतु अजीत सिंह की दृष्टि सिंधिया की तरफ़ है. दौलत सिंह की नज़र ज़मीन की ओर है. वह अत्यधिक क्रोध से भरा है मानों आंखों से आग-सी बरस रही है. ज्वान सिंह शून्यदृष्टि से बाहर अरावली-पर्वत श्रेणियों को देख रहा है.

सन्नाटे का कारण सिंधिया का प्रस्ताव है. वह प्रस्ताव सुन कर भीम सिंह चौक जाते हैं. दोनों एक दूसरे की तरफ़ देखते हैं. भीम सिंह ने कहा, 'श्रीमंत यह समस्या मेरे जीवन की दुसाध्य समस्या है.'

सिंधिया ने तपाक से कहा, 'भारी समस्या के साथ छोटे-मोटे प्रश्न सदैव बने ही रहते हैं, भीम सिंह जी. जब देश को अंग्रेज़ हजमकर डकार तक नहीं ले रहे हैं, तब सूर्यवंशी और चंद्रवंशी एक नाबालिग लडक़ी के लिए...! ख़ैर महाराज कृष्णा कुमारी का ब्याह यदि आप मुझसे कर देते हैं तो राजपूत और मराठे एक हो जायेंगे तथा होल्कर और सिंधिया की आपसी फूट का समाधान भी निकल सकेगा.'

'किंतु महाराज आप तो राठौरों की ओर से संदेश लाये थे कि राजकुमारी का ब्याह जगत सिंह से न कर मान सिंह से कर दूं.'

'जी हां. किंतु मैं राजपूताने में राठौर और कछवाहों का तथा शिसोदियों और कछवाहों का झगड़ा भी देख रहा हूं. भीम सिंह जी सिंधिया आपको भारत सम्राट बना सकता है. फिर राजपूतों ने तो मुसलमानों तक को लड़कियां दी

हैं?'

'श्रीमंत् शिसोदियों ने नहीं.'

'महाराज! आप हम हिंदुओं को अपनी कन्या दे कर न केवल इतिहास बदल देंगे बल्कि गौरव से गौरवान्वित और दूसरी नवीन रक्त से प्लावित जाति में, रक्त का संबंध स्थापित कर, एक नये इतिहास का निर्माण करेंगे. आप भारत सम्राट बनेंगे.'

परंतु महाराज शिसोदियों का आदर्श वाक्य है, 'जो दृढ़ राखै धरम को ताहि राखै करतार.'

किंतु महाराज, 'हम भी हिंदू हैं, हिंदू जाति का अभिमान, हिंदुस्तान का अभिमान भी हमारा अभिमान है.'

'महाराज एक अबोध बच्ची का जीवन सारे उत्पातों से बचा सकता है!' कहता हुआ सिंधिया उठ खड़ा हुआ. भीम सिंह तथा सभी उपस्थित दरबारी भी चलकर दरवाजे तक सिंधिया को छोड़ आये.

... इधर भीम सिंह का मन उथल-पुथल कर रहा था. भीम सिंह को संबोधित करता अजीत सिंह कहता है, 'महाराज सिंधिया के मनसूबों को एकलिंग के अतिरिक्त कोई नहीं जान सकता. इतना अवश्य है कि हमारे न के उत्तर में वह शांत नहीं बैठेगा.'

तभी दौलत सिंह क्रोध में तमतमाए स्वर में बोला, 'दौलत के रहते शिसोदियों की राजकुमारी शूद्र को दी जाये, यह संभव नहीं.'

दौलत सिंह, 'मेरे प्रस्ताव को तत्काल न ठुकरा पाने का कारण आज मेवाड़ का अकेलापन है!'

दौलत सिंह स्मरण दिलाने की मुद्रा में कहता है, 'अन्नदाता, हमारे पूर्वज प्रताप के काल में भी सारा हिंदुस्तान अकबर के समय और राजसिंह जी के समय औरंगजेब के साथ था. महाराज, आज भी मेवाड़ के वंशज चोड़वत, संगावत, मेगावत, जूगावत और मुक्तावत आपके साथ हैं. युद्ध का बिगुल बजते ही सहस्त्रों भील अपने प्राण-प्रण से मैदान में उतर आयेंगे.'

'नहीं राव! आप स्वप्न देख रहे हैं?'

'तो क्या महाराज आप सिंधिया को राजकुमारी का हाथ देना चाह रहे हैं?'

'नहीं.'

'तो फिर महाराज आप पिता होने के नाते मेरे कठोर प्रस्ताव को सुनने का धैर्य रखें. महाराज मेवाड़ में राजपूतानियों

का प्राण त्याग कोई नयी बात नहीं. '

'किंतु अजीत सिंह जी यह जौहर का समय नहीं है, जौहर बलिदान है और यह आप हत्या का सुझाव दे रहे हैं? जो मेवाड़ के कुल का कलंक होगा.'

'महाराज मैं कोई नयी बात नहीं कह रहा हूं, हमारे कुल में कन्याओं की हत्या जन्म लेते ही करने की रही है. फिर यह तो राजहित में दिया गया बलिदान है.'

'किंतु यह कार्य करेगा कौन?' छाती पर पत्थर रखते हुए भीम सिंह ने पूछा.

अजीत सिंह ने कहा, 'यह कार्य कुंवर जी करेंगे.'

... मैं तब तक पूरे दृश्य को आत्मसात कर चुकी थी. मेरी सहेली के हाव-भाव से वहां कुछ दूर पर उपस्थित मेरी अन्य सहेलियां जिनकी वय १४ से १६ साल तक है एक-एक कर जा चुकी थीं. मैं भी मन ही मन आगे की भूमिका तैयार कर रही थी कि तभी एक दासी ज्वान सिंह के मिलने का संदेश सुनाती है. ज्वान सिंह जो सदा मेरे साथ हंसता-मुस्कराता मिलता था आज उसका चेहरा उतरा देख कर मैं अचंभित भी थी और शंकित भी. किंतु समाधानकारक उत्तर न पाकर मन ही मन व्यथित भी. मुझे उस सुनहरे बाग में बसंत ऋतु में चारों ओर सियार और काग बोलते सुनायी

पड़ रहे हैं. मेरी नज़र ज्वान सिंह पर पड़ी, वह निस्तेज था.

वह निरीह भाव से दुखी मन से बोल पड़ा था, 'बहना, मेवाड़ अपनी पुरानी विपत्ति नये रूप में लेकर आया है.'

मैंने तपाक से पूछा था, 'कौन सी विपत्ति, भाया?' 'भाया बोलें न! मुझे भी मेवाड़ की विपत्ति जानने का अधिकार है, आख़िर यह देह मेवाड़ की ही माटी से तो बना है.'

'कैसे कहूं बहना, जिन हाथों ने तुझे खिलाया, जो साथ खेला, जो दृष्टि शरद की स्वच्छ पूर्णिमा की तरह तुम्हारे चेहरे पर बिखरती रही, वही आज कर्तव्य के नाम पर तुम्हारा बलिदान मांग रही है.'

'भैया, राजपूतानियां अबला नहीं होतीं. समझ गयी. आपत्ति का कारण मैं ही हूं. तुम्हें स्मरण दिलाना चाहती हूं कि मेवाड़ की वीर माताओं के स्वप्न और जाग्रत दोनों अवस्थाएं अपने धर्म और कुल के उत्सर्ग के लिए सदैव तत्पर रहते हैं. मैं भी उसी अवसर की तलाश में सदैव रहती हूं. आप निर्विकार भाव से अपना और राजा के मंतव्य से हमें अवगत करा सकते हैं.'

'भैन, मेवाड़ राठौरों, कछवाहों, अंग्रेज़ और मुसलमानों से घिरा है, तिस पर मराठों में सिंधिया ने महाराज से तुम्हारा हाथ मांगा है. आखिर शिसोदिया खानदान सिंधियाओं को अपनी लाड़ली कैसे सौंप सकते हैं?'

'ओह तो समस्या राजपूताने के आन-बान-शान की है.' मैं कुछ बोल पाती कि ज्वान सिंह के हाथ से छिपाई कटार गिर जाती है. ज्वान सिंह कुछ भी बोले बिना अश्रु भरे नयनों से बाहर भाग जाता है. मेरी आंखों के सामने बलिदानी परंपरा की वह धारा घूम जाती है जो हमारे नयनों में स्वप्रवह सदैव बनी रहती है.

...मैं वहां से भाग कर माता के पास जाती हूं. 'मां'.

मां ने सुनते ही तपाक से पूछा, 'क्यों बेटा बसंत की धूम हो गया?' अचानक बहुत जल्दी आ गयी?

'हो तो गया किंतु अधूरा मां, सच का खेल तो अब प्रारंभ होने वाला है.'

'कहो क्या हो गया?'

'राज दरबार के निर्णय के पालन के लिए ज्वान सिंह भैया आये थे किंतु उनके हाथ से फिसल कर यह कटार पूरी गाथा अनकहे ही कह गयी, मां.'

'ओह! निश्चित ही दरबार में कुछ नया खेल चल रहा है जिसमें बलि आख़िर राजपूतानियों की ही होनी है?'

'नहीं मां, इस बार राजपूतानियों को नहीं केवल और केवल तुम्हारी लाड़ली की बलि मेवाड़ मांग रहा है.'

'नहीं बेटी, मैं ऐसा नहीं होने दूंगी.' कहते हुए कृष्ण को अपनी छाती में समेट लेती है.'

'नहीं मां, रोओ नहीं. एक बार फिर मेवाड़ में चंडी के नृत्य का समय आ गया है.'

'नहीं बेटी, नहीं, अभी मेवाड़ निर्बल नहीं हुआ है. बप्पा रावल, सांगा और प्रताप तथा राजसिंह का रक्त अभी हमारी धमनियों में ज़िंदा है. मेवाड़ के सोलहों घराने, हमारे भील नायक शत्रुओं के रक्त से रणचंडी का शृंगार करेंगे.'

'नहीं मां अब इन सब बातों, घातों-प्रतिघातों का समय बीत गया है. ज्वान सिंह की कटार ने सारा रहस्य पूर्णिमा की चांदनी की तरह अंतर्मन तक उजाह फैला दिया है. अब कहने को नहीं करने की बारी आ गयी है, मेवाड़ हमारा बलिदान मांग रहा है मां.'

'तो क्या तुम आत्महत्या करोगी?'

हम मां-बेटी का संवाद चल ही रहा था कि तभी पीछे से एक गंभीर स्वर सुनायी देता है, 'नहीं महारानी जी आत्महत्या नहीं मैंने एक दूसरा उपाय निकाला है जिससे कृष्णा बेटी सहजता से आत्मबलिदान कर देगी और इसमें महाराज की भी सम्मति है.' वह कौन सा उपाय है अजीत सिंह? अजीत सिंह ने बिना किसी भूमिका के कहा था,'ज़हर का प्याला.'

'वाह रे मेवाड़ के वंशजों! नहीं, यह नहीं हो सकता. बेटी, स्त्रियों की हत्या कर उसे बलिदान कहना, ऐसा बलिदान मैं नहीं होने दूंगी. यह हत्या है, हत्या. यह नपुंसकता है, बलिदान की उज्ज्वल परंपरा पर यह कालिख़ है. राजदरबार को इस पर पुनर्विचार करना चाहिए. मैं इससे सहमत नहीं हूं, इसमें कायर पुरुष वर्ग बलिदान के नाम पर एक स्त्री की क्या हत्या नहीं करना चाहता ? यदि पुरुष हमारी गौरवमयी परंपरा के अनुसार केसरिया बाना पहनकर निकले तो हम स्त्रियां बलिदान के लिए तैयार हैं? यह तो पुरुष वर्ग की परंपरागत कमज़ोरी रही है कि हम स्त्रियों को केवल बलिदान की वस्तु माना, रण में तलवार लेकर योद्धा का स्थान लेने ही नहीं दिया. अन्यथा आज मेवाड़ की सेना दोगुनी होती और पुरुषों के इस कायराने हमले की परिस्थिति ही नहीं

बनती. बेटी मैं तेरी हत्या नहीं होने दूंगी.'

'मां यह हत्या नहीं राज्य के लिए, पिता की इच्छा के लिए, जाति, कुल और परंपरा के संरक्षण के लिए आत्म बलिदान है, उत्सर्ग है. यह समष्टि के लिए व्यष्टि का बलिदान है, मां. फिर यहां पुरुष और स्त्री का भी प्रश्न नहीं यह धर्म की रक्षा के लिए राज्य की प्रजा के बलिदान का अवसर है. आख़िर राजकुमारी हुई तो क्या हुआ, मैं भी तो इस राज की एक प्रजा हूं.'

तभी अजीत सिंह का विष का प्याला लेकर प्रवेश यह कहते हुए हुआ था, 'राजकुमारी आपका उत्सर्ग धन्य है. आपको स्वर्ग से भी ऊंचा स्थान मिलेगा.' शायद यह उनकी मेरे लिए आश्वस्ति थी. राजदरबार का सामूहिक निर्णय था, जो न केवल संदेश था बल्कि पालन हेतु अपरिहार्य आदेश भी था.

तब मेरा और कोई उत्तर हो भी क्या सकता था? 'मैं यह तो नहीं जानती कि मैं स्वर्ग जाऊंगी या नर्क परंतु जीवन को जब भी उत्सर्ग का अवसर प्राप्त हो पीछे नहीं हटना चाहिए. फिर आप तो हमारे उत्सर्ग के लिए महादेव का महा-आसव ले कर आये हैं. वे यदि उसे धारण कर नीलकंठ हो सकते हैं तो मैं क्यों नहीं? मां अपने मोह से मुझे नहीं बांधो मां! यह अनंत की यात्रा मुझे कर्तव्य पालन के हेतु करनी ही होगी. मां! मुझे यह तो नहीं मालूम कि मृत्यु के पश्चात मैं कहां जाऊंगी, मेरा क्या होगा किंतु महादेव और कुलदेवी से यही प्रार्थना है कि जब भी, जहां भी जन्म हो वह देह इस राष्ट्र के ही काम आये. जय हो मां. जय नीलकंठ. मां! मेरी यात्रा अब प्रारंभ हो रही है, आंसू मत बहाना. पिताजी और भैया को भी कहना मेरे उत्सर्ग को आंसू से नहीं मुस्कराहट और गर्व से स्वागत करें.'

'लाइए अजीत सिंह जी लाइए महाकाल का प्रसाद. मां, हो सकता है मेरे इस बलिदान से जातीय रुढ़िता ख़त्म हो सके. हिंदुओं के अपने जातीय भेदों को देखने का नवीन दृष्टिकोण प्राप्त हो सके. ललनाओं और महारानियों को अपनी सुचिता के लिए महलों में बलिदान होने की जगह रणभूमि में बलिदान देने का पथ प्रशस्त हो सके. मेरी चिर साधना सफल हो सके. मेरा उत्सर्ग मेवाड़ की नयी गाथा के साथ संपूर्ण भारत का इतिहास ही नहीं वर्तमान बन सके, मां! आशीर्वाद दें मां! जय महादेव, जय भवानी!'

२१-२२ शुभालय विलास,
बरखेड़ा पठानी,
भोपाल–४६२०२२ (म. प्र.).

दो ग़ज़लें

नवीन माथुर 'पंचोली'

साथ जब भी नया सफ़र रखना।
रास्ता कोई मुख्तसर रखना।
रात कट जाये जो हंसते-हंसते,
इक हंसी साथ हमसफ़र रखना।
ख़ूब चाहत है जिससे मिलने की,
पास उसकी सही ख़बर रखना।
लोग सारे यक़ीं करें जिस पर।
बात बेबाक इस कदर रखना।
जिसको सुनकर सुरुर आ जाये,
अपनी ग़ज़लों में वो असर रखना।

किसी के पास जाकर देखते हैं।
मुकद्दर आज़माकर देखते हैं।
जहां पर बादशाहत है किसी की,
उसी से मात खाकर देखते हैं।
चरागों को हवाओं से बचाने,
हथेली हम जलाकर देखते हैं।
ख़ुशी से रख सके हम बात अपनी,
किसी पर हक जताकर देखते हैं।
मुहब्बत की ग़ज़ल को गुनगनाकर,
हंसी दिल को रुलाकर देखते हैं।

अमझेरा, जिला धार (म. प्र) - ४५४४४१. मो. : ९८९३११९७२

सुंदरवन की अनूठी कथा

डॉ. अमिताभ शंकर राय चौधरी

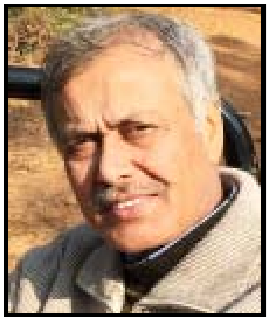

जन्म : १८ जनवरी, १९५५ .
जलालपुर, बिहार
निवास एवं शिक्षा : जन्म से, काशी में
शिक्षा : एम. बी. बी. एस. (आई. एम. एस./बी. एच. यू.)
लेखन :
हिंदी हंस, आजकल, बालहंस, बालभारती, समकालीन भारतीय साहित्य, नया ज्ञानोदय, सुमन सौरभ, सरिता, चंपक, नंदन, अक्षरा, रंग अभियान आदिल एवं बांग्ला देश, आनंदमेला, उनिशकुड़ि, किशोर भारती, नंदन, गल्पगुच्छ, छोटोदेरकथा, सप्ताह, गणशक्ति, गणनाट्य आदिलपत्र पत्रिकाओं में बच्चों एव बड़ों की कहानियां, कविताएं, नाटक तथा आलेख प्रकाशित
प्रकाशन : पुस्तकें : १.गणित के पंख (बाल-उपन्यास. सीबीटी द्वारा पुरस्कृत व प्रकाशित. इसका अंग्रेज़ी अनुवाद -मैथ्स गेट विंग्स सीबीटी द्वारा प्रकाशित.) २. सातसमुद्र (बांग्ला) ३. दर्जन-भर शिल्पायन, दिल्ली से प्रकाशितल-कहानीसंग्रह ४. फुट प्रिन्ट्स ऑन द रॉक (अंग्रेजी) सद्य प्रकाशित लघु उपन्यास
एन. बी. टी. द्वारा 'सातसमुंदर' बाल-उपन्यास किस्तवार प्रकाशित, सी. बी. टी. के पुरस्कृत-संकलनों में एवं सी. बी. एस. ई. पाठ्य पुस्तक में कहानियां संकलित.
आलेख : कथा पत्रिका द्वारा प्रकाशित, बहुवचन पत्रिका म. गां. हिंदी अंतरराष्ट्रीय वि. वि., वर्धा एवं अन्य संकलनों में बाल साहित्य पर आलेख संकलित
पुरस्कार : सी. बी. टी., राष्ट्रीय सांप्रदायिक सद्भाव, प्राची पत्रिका द्वारा कहानियां पुरस्कृत. बंग्ला पत्रिकाओं द्वारा आयोजित प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत. कथाबिंब द्वारा 'कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार' २०१३ एवं २०१७
अनूदित : अंग्रेजी, ओड़िया, मराठी एवं गुजराती में.
सम्मान : महात्मा गांधी अंतराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, द्वारा हिंदी सेवी सम्मान दिसंबर, २०१६
आमंत्रण : अकादेमी स्टाफ कालेज, काशी हिंदी विश्वविद्यालय द्वारा कई बार कहानी पाठ का आमंत्रण
संप्रति : निजी चिकित्सक

पीरखाली की ओर से आकर एक भट्भटी यानी लांच रसूलगंज के घाट पर रुक गयी. गंज की बगल से विद्याधरी नदी का मटमैला पानी किसी अल्हड़ किशोरी की तरह अपना कत्थई आंचल उड़ाते हुए बंगोपसागर यानी बंगाल की खाड़ी की ओर भागती जा रही है. लांच तो ठहर गयी. मगर उसकी मशीन अभी भी आवाज़ कर रही है — भट् भट् भट्... पीछे से डीज़ल का काला धुंआ निकल रहा है.

भट्भटी की रस्सी थामे काबुल शेख डेक से कूद गया. दलदली मिट्टी में पैर धंसाता हुआ वह लांच को घाट की ओर खींचने लगा. विद्याधरी की लहरों पर हिचकोले खाती लांच के डेक पर खड़ा नृसिंह लस्कर अपनी राईफ़ल के सहारे ख़ुद को संभालते हुए खड़ा था, ''क्यों काबुल, वह आदमी गंज में मिल जायेगा न?''

''क्यों नहीं साहब? अरे अभी नहीं मिलेगा तो शाम तक ज़रूर घर वापस आयेगा. तभी बात कर लेंगे. अभी चलिए तो सही.''

उस समय रसूलगंज का पंसारी साऊ सरकार की दुकान के सामने खड़ा सिराजुल बीड़ी फूंक रहा था. अपने संगी साथियों के साथ सुंदरवन के जंगल से मधुमक्खिओं के बड़े-बड़े छत्तों से शहद इकट्ठा करके वह दुकानदारों को बेचता है. बक़ाया पैसे के लिए खड़ा-खड़ा वह नाक से धुंआ निकाल रहा था, ''अरे अब और कितनी देर लगाइएगा, सरकार बाबू? अभी घर पहुंचेंगे. नहायेंगे, धोयेंगे. तब कहीं जाकर पेट की आग में दो कौर भात डाल सकेंगे.''

''क्यों घबड़ा रहा है? जरा ग्राहकों से तो निपट लेने दे. अभी तो बस बोहनी भई है.'' परेश सरकार ने अपने गल्ले के डिब्बे को बंद करते हुए कहा. हथेली में आयी लक्ष्मी को हाथ से जुदा करने में उसे टीस-सी होती है.

अचानक लांच की आवाज़ से सिराजुल की नज़र घाट की ओर गयी. मन ही मन वह चौंक उठा,''अरे वह काबुल शेख है न? स्साला पीछा नहीं छोड़ रहा है.'' उसने झट से बीड़ी को बेंच पर दबाकर

बुझाया. बीड़ी को दाहिने कान के ऊपर खोंस कर, बकाया रुपया लिये बग़ैर चलता बना.

साऊ सरकार ने टूटी हुई ऐनक के ऊपर से तिरछी नज़र से उसे जाते हुए देखा. तत्काल कुछ नहीं कहा. उसके काफ़ी दूर निकल जाने पर पीछे से आवाज़ देने लगा,''अरे अपना पैसा नहीं लेगा, सिराजुल?''

जल्दी–जल्दी घर लौटकर, नहा धोकर, टेंगरा और बाटा मछलिओं के 'झोल' (रस्सेदार सब्जी) के साथ भात खाकर सिराजुल चटाई पर लेट गया. वह काबुल शेख से बिल्कुल मिलना नहीं चाहता था. दोनों का घर इसी गांव में है. बचपन में हाड़भांगा के कीचड़ से सने रास्तों में एक साथ लोट-पोट कर दोनों बड़े हुए हैं. फिर दोनों के रास्ते अलग-अलग हो गये. सिराजुल अपना पुश्तैनी पेशा छत्ते से शहद इकट्ठा करने का काम करने लगा, तो काबुल चला गया गंज बाज़ार में दलाली करने.

शायद सिराजुल की आंखें थोड़ी लग गयी थीं. अहाते के बाहर-गांव के कुत्ते या गाय को अंदर आने से रोकने के लिए कटे हुए बांस की फराटी से बने तीन फुटिया बाड़े के जनला यानी छोटे से दरवाज़े के पास खड़ी उसकी बीबी मदीना की आवाज अचानक सुनाई दी, ''कहा तो एक बार थोड़ी देर बाद आइए.''

सिराजुल के कान खड़े हो गये. जरा सा सर उठाकर बाहर की बातचीत ध्यान से सुनने लगा. कौन आया है? अरे! काबुल शेख? उसी की आवाज़ है न? हां, बिलकुल. स्साला! खच्चर!

काबुल कह रहा था, ''भाभी, एक बार बुलाओ तो सही. अरे तुम्हारे फ़ायदे के लिए ही कह रहा हूं. घर बैठे पांच हज़ार मिल जायेंगे.''

''अच्छा, तो घंटे भर बाद आइए न. दिन भर खट खुट कर कोई आदमी सो रहा है, उसे कैसे जगा दूं?''

अरे स्साली! तुझे कहने की क्या ज़रूरत थी कि मैं घर पर हूं. सिराजुल मन ही मन लगा बीबी से झगड़ने. सोचा कमरे से निकल कर भागूं. मगर कैसे? रास्ते पर तो दोनों दुश्मन खड़े होंगे. हरामी काबुल और वह बंदूकवाला साहब. लेकिन अंदर दुबक कर बैठे रहे तो धर लिये जायेंगे न. सोचते-सोचते वह उठा, कमीज़ पहनी, माचिस और बीड़ी को कमर के पास लुंगी में खोंस कर घुटने रेंग कर चुपके से बाहर निकल आया. दरवाज़े के पास खड़े केले के पेड़ की आड़ के कारण वह रास्ते से दिख नहीं रहा था. घुटने के बल रेंगते हुए वह कुटिया के पीछे पहुंचा. फिर बांस का बाड़ा डांग कर चंपत हो गया.

इधर इन लोगों से बहस करते हुए अंत में झुंझला कर मदीना यह कह बैठी, ''लीजिए सा'ब, आप लोग आकर उसे जगा लीजिए. ग़रीब को चैन से सोने का भी हक़ कहां?''

तुरंत काबुल शेख चप्पल की आवाज़ करते हुए और दोस्त को बुलाते हुए, कमरे तक चला आया,''सिराजुल, सिराजुल!''मगर अंदर झांकते ही वह दंग रह गया. बदमाश, फिर भागा! अपनी मेहनत बेकार जाने के कारण उसे ग़ुस्सा आ रहा था. फिर भी मुसकराते हुए पीछे मुड़कर मदीना से कहा,''भाभी, वह तो फिर भाग गया. अब?''

''मैं क्या बताऊं? छोड़ो न भैया उसे. और किसी दूसरे को ढूंढ़ लो.''

''इतना आसान थोड़े न है. और कौन ऐसा आदमजात है जिसका बाघ के साथ लव हो?''

बाहर खड़ा लस्कर सब सुन रहा था. होंठों के बीच सिगरेट दबाता हुआ वह अंदर आ गया. चारों तरफ़ नज़र घुमाते हुए उसने कहा,''देखिए मैं साफ़ बात करनेवाला आदमी हूं. घुमा फिरा कर मीठी-मीठी बातें करना मुझसे नहीं होता. मैं जैसे भी हो उस बाघिन के एक बच्चे को हासिल करके रहूंगा. और उसके लिए मैं कुछ भी कर सकता हूं. कुछ भी. यह तो साफ़ दिख रहा है कि तुम्हारी माली हालत ऐसी नहीं है जो तुम्हारा आदमी मेरी बात को ऐसे ठुकरा रहा है. सोच लो. उसे समझाओ!''

''अब मैं क्या बताऊं, साहब? माने तब न. बहुत ज़िद्दी है. मैं तो उसे लेकर ऐसे ही जल भुन रही हूं. न बच्चों को भर पेट खिला सकती, न कुछ. बस एक शहद बिक्री का ही तो भरोसा है।''

''तो फिर इतनी अकड़ कैसी? तुम उसकी बीबी हो, समझा नहीं सकती? उसे तो खाली हमें वहां तक ले जाना है, बस. और कुछ नहीं करना है. बस इतनी सी बात के लिए पांच हज़ार दूंगा. एक मुश्त इतने रुपये तुमने कभी देखे भी हैं? एक साथ ?''

सिर के ऊपर साड़ी को आगे खिसका कर मदीना चुप रही.

''तो ? क्या सोच रही हो, भाभी?'' काबुल शेख के टूटे हुए दांत बारिश में भींगे नागफनी के कांटे जैसे चमकने

लगे.

''ठीक है, तुम उसे समझाओ. हम फिर आयेंगे. आज शाम तक मैं हाड़भांगा में हूं. रात तक निकल जाऊंगा.'' लस्कर ने काबुल को इशारा किया. दोनों चल दिये.

बच्चे दोनों स्कूल से अभी लौटेंगे. पढ़ने की तो ख़ास फ़ीस वीस नहीं लगती. मगर स्कूल से लौटने पर उनको मदीना खिलायेगी क्या? चावल कुछ बचा है. अपने हिस्से का टेंगरे का झोल उसने बच्चों के लिए बचा रक्खा है. यह तो है गृहस्थी की हालत. तिस पर मियां इतनी नबाबी क्यों करते हैं? सा'ब की बात नहीं सुनेंगे. उस दिन तो गरियाते हुए काबुल शेख को घर से निकाल दिया था. आखिर क्यों? ख़ुद को नबाबजादा समझते हैं या हारुन अल रशीद?

कई ताड़ के पेड़ जहां पल्टन की तरह एक कतार में खड़े हैं, उसके पीछे के मिट्टी की मेड़ पर बने पगडंडीनुमा रास्ते से सिराजुल जल्दी–जल्दी चला जा रहा था. चलते चलते वह अपने दोनों गालों पर थप्पड़ मारने लगा, ''अहमक! अहमक हूं मैं. हाय अल्ला! मदीने को दुर्गा के बारे में मैंने क्यों बताया ? उ स्साली चुड़ैल तो ऐसी है कि पेट में कोई बात पचती ही नहीं है. हांड़ी में खौलते चावल की तरह बाहर निकलने की कोशिश करती रहती है. या ख़ुदा! अब क्या होगा? बेचारी दुर्गा और उसके बच्चों की हिफ़ाजत करना, परवरदिगार!''

अपने मन ही मन भुनभुनाते हुए वह चला जा रहा था. कभी मन में आक्रोश उबाल पर होता. काबुल शेख और उस आदमी का टेंटुआ दबा देने का मन करता, तो कभी मदीना का झोंटा पकड़ कर झकझोर देने का मन करता. फिर दूसरे ही क्षण एक व्याकुल दमघोंटू लाचारी के चलते पत्थर पर सर पटक-पटक कर रोने को जी चाहता. अल्लाह, तुमने ग़रीबों को दो हाथ तो दिये, मगर उनमें सिवाय लाचारी के जरा ताकत दे नहीं सकते थे ?

अभी तो बस तीन चार महीने ही हुए हैं — पिछले जाड़े में जब इस कहानी का पर्दा उठा था. नवंबर से मार्च तक जाड़े में — हर पूर्णिमा और अमावस के समय — कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष के अंत तक — महीने में दो बार अलीव रिडली कछुए अंडे देने के लिए सागर से निकल कर बलुई तट पर हज़ारों की संख्या में निकल आते हैं. वहीं वे अपने झिल्लीदार पिछले पैरों से रेत खोदकर उन गड्ढों में अंडे देते हैं. फिर अंडों को बालू से ढक कर वापस समुंदर की ओर चले जाते हैं. अलीव रिडली कछुओं की सात प्रजातिओं में से पांच प्रजातियां सुंदरवन के इस इलाके में पायी जाती हैं.

यहां विद्याधरी के मुहाने के आसपास बसे हाड़भांगा, मैनाटोला और पीरखाली वग़ैरह सुंदरवन के कई गांवों के लोग उन कछुओं को पकड़ने के लिए बलुआई तट के ऊपर नदी से कुछ हट कर बड़े–बड़े गड्ढे खोद रखते हैं. अंडे देने के लिए जाते समय या अंडे देकर वापस लौटते समय कछुए उन गड्ढों में गिर जाते हैं. अगर उन्हें ज्वार का पानी मिल गया, तब तो वे तैर कर निकल भाग सकते हैं. इसीलिए भाटा रहते-रहते मछुए, मल्लाह और दूसरे लोग उन्हें उठा लेते हैं. कछुए का गोश्त वे खाते भी हैं और उन कछुओं को बोरे में भरकर कोलकाता के बाज़ार के दलालों को बेचते भी हैं. ऐसे ही एक बड़े से गड्ढे में एक बाघिन गिर गयी थी.

उस दिन सुबह होते-होते नाव में सवार होकर सिराजुल अपने संगी साथिओं के साथ निकल पड़ा था — सुंदरवन के घने जंगल में से मधुमक्खिओं के छत्ते तोड़कर शहद लाने. जंगल में जाने के पहले हिंदू मुसलमान सभी बनबीबी या बनदेवी के 'थान' (स्थान या मंदिर) पर पूजा चढ़ाते हैं. बनबीबी या वनदुर्गा की मूर्ति भी अजीब है. यहां देवी के साथ–साथ भक्त की भी पूजा होती है. कहते हैं दखिना राय नामक दैत्य एक बाघ का रूप धर कर उनके भक्त दुखी का शिकार करने आया था, तो बनबीबी एवं उनके भाई शाह जंगली ने उसे हराकर जंगल में खदेड़ दिया. इसलिए बनबीबी की बगल में दुखी भी खड़ा रहता है. किसी किसी मंदिर में महिषासुर के तर्ज पर दखिना राय भी गदा लेकर खड़े मिल जाते हैं. हिंदुओं के मंदिर में देवी के हाथ में गदा और त्रिशूल होते हैं. वह साड़ी पहनी रहती हैं. मगर मुसलमानों के थान में उनके सिर पर पिरानी टोप और मांग पर टिकुली होते हैं. वह घागड़ा पैजामा पहनी होती हैं.

कहते हैं बरिझाटी गांव में धोना और मोना दो भाई रहते थे. पेशे से वे मौले थे. यानी जंगल से शहद इकट्ठा करते थे. एक दिन धोना ने कहा, ''मैं सात नाव लेकर अट्ठारह ज्वार के देस सुंदरवन में जाऊंगा और ढेर सारा शहद और लकड़ी लेकर वापस आऊंगा.'' मोना आलसी था. बोला, ''यह सब मुझसे नहीं होगा, भाई.''

आख़िर दुखी नाम के एक ग़रीब चरवाहे को धोना ने पटा लिया. दुखी उसके साथ जाने को तैयार हो गया तो उसकी विधवा मां ने उससे कहा,''बेटा जंगल में कोई मुसीबत आये तो बस बनबीबी का ध्यान करना. वही तुम्हारी रक्षा करेंगी.''

सात नाव चल पड़ीं. दानवराज दखिना राय के केंदुखाली द्वीप में आकर नावें लगायी गयीं. मगर दखिना राय को नज़राना दिये बग़ैर लोगों को लेकर धोना जंगल में घुस गया. तीन दिनों तक वे जंगल में घूमते रहे, पर एक भी छत्ता नज़र नहीं आया. अंत में तीसरी रात के तीसरे पहर में दखिना राय धोना को सपने में आये, ''तूने मुझे नज़राना नहीं दिया, इसीलिए तुझे छटाक भर शहद भी नहीं मिला।''

''तो प्रभु, अब कोई उपाय बतलाओ.''

''अब तो तुझे नरबलि देना होगा.''

''क्या कह रहे हैं, प्रभु? यह कैसे संभव है?''

पर दखिना राय नहीं माने.

अंत में धोना को राजी होना पड़ा. दूसरे दिन जंगल में उन्हें ढेर सारे छत्ते मिले. शहद से सारी गगरियां भर गयीं. शाम तक सारा साजो सामान लेकर धोना चलता बना. मगर जाते-जाते उसने दुखी से कहा,''तू नदी की दलदल में खड़ा रहकर पहले सातों नाव को धकेल कर पानी में छलका देना. तभी आखिरी नाव में खुद चढ़ जाना.''

मगर सब कुछ तो पहले से ही तय था. ज्यों सातवीं नाव भी पानी में निकल गयी, लोगों ने उस अभागे को नाव पर चढ़ने न दिया. धोना के इशारे से लोग डांड़ खेते रहे. सभी नावें उसकी आंखों के सामने से निकल गयीं.

दुखी खड़ा खड़ा रोता रहा. तभी उसे खाने दखिना राय बाघ के भेस में वहां आ पहुंचा. बेचारा दुखी आंखें मूंद कर बनबीबी को बुलाता रहा,''मां, बचाओ.''

भक्त की पुकार सुनकर बनदेवी अपना भाई शाह जंगली को लेकर वहां आ धमकीं. भयंकर लड़ाई हुई. शाह जंगली अपनी तलवार से दखिना राय का सर गर्दन से अलग करने ही वाला था कि उसकी मां नारायणी दौड़ते हुए आकर पछाड़ खाकर गिर गयीं,''क्षमा करो, मां. मेरी इकलौती संतान है. दखिना को मत मारो.''

देवी का दिल पसीज गया. शाह जंगली ने उसे एक लात जमाकर कहा, ''जा भाग.'' दखिना राय बीहड़ वन में भाग गया.

बनबीबी ने दुखी को ढेर सारे शहद और लकड़ी देकर घर वापस भेज दिया. दुखिया ही गांव गांव घूम कर बनबीबी की महिमा का प्रचार करता रहा.

विद्याधरी के मुहाने पर जहां सुंदरी पेड़ों की जड़ें बिलकुल पानी से ऊपर निकली हुई हैं. जहां पेड़ों की शाखों पर रामचिरैया से लेकर बगुले तक न जाने कितनी तरह की चिड़ियां बैठी रहती हैं, वैसी ही जगह एक घाट पर नाव बांधकर वे जंगल के अंदर घुस गये. बीहड़ वन में अंदर जाने से पहले सभी अपने सिर के पीछे कागज़ का मुखौटा लगा लेते हैं. मुखौटे पर आंख, नाक और मुंह बने होते हैं. यानी बाघ या कोई जानवर अगर उनका पीछा भी करे तो कमसे कम उसे यह लगे कि इस आदमी का चेहरा उसी की ओर है. कई लोग हाथ में लाठी लेकर चल रहे थे. दो एक के पास मशाल जलाने के लिए कपड़े और मिट्टी के तेल वग़ैरह थे. छत्ते से मक्खियों को भगाने के लिए एक मजबूत डाली पर कपड़े लपेट कर, उस पर मिट्टी का तेल डालकर वे मशाल जला लेते हैं. फिर उस जलती हुई मशाल को छत्ते के नज़दीक ले जाते हैं. मशालवाले आदमी का सारा चेहरा वग़ैरह ढका होता है. फिर भी मधुमक्खियों के डंक से बचना मुश्किल ही होता है. सुंदरवन में मुहाने के पास सुंदरी, खागड़ा और धुंदुल के पेड़ हैं, तो बीहड़ जंगल में आम, कटहर, बांस और केले, साथ में हेताल, गबान और होगले के पेड़ भी. और उन पर तोते, खंजनि और जंहिल आदि हज़ारों पक्षी. ख़ासकर जून से अक्तूबर तक. वे लोग चले जा रहे थे. चारों ओर पेड़ों पर तरह-तरह की रंगबिरंगी तितलियों के झुंड मंडरा रहे थे.

जंगल में एक जगह डालों से लटकते कई बड़े–बड़े छत्ते देखकर वे रुक गये. बदन पर केरोसिन मलकर सिराजुल ने अपनी क़मीज़ से आंखों के सामने देखने भर की जगह छोड़कर चेहरे को अच्छी तरह तोप लिया. फिर हाथ में मशाल लेकर एक हेताल के पेड़ पर चढ़ गया.

देखते देखते हज़ारों की संख्या में मधुमक्खियां चारों ओर उड़ने लगीं — अपने दुश्मनों की खोज में. बाकी लोग थोड़ी दूर पर झाड़ियों के पीछे छिपे रहे. जब सभी मक्खियां अपने छत्ते छोड़कर भाग गयीं, तो उसने कमर में बंधे चाकू से छत्तों को काटकर नीचे खड़े लोगों की खैंची में डाल दिया. यही क्रम चलता रहा. अंत में छत्तों को काट कर उनके टुकड़ों को निचोड़–निचोड़ कर एक हांडी में शहद

इकट्ठा कर लिया गया. अब वे वापस लौट चले घाट की ओर.

हाड़भांगा के घाट पर नाव के लगते ही बाक़ी सब तो अपने घर की ओर चल दिये, मगर सिराजुल साऊ सरकार की दुकान में शहद देकर विद्याधरी के किनारे-किनारे जंगल की ओर चलता रहा. कल दोपहर में एक जगह सुंदरी पेड़ की डाल से वह एक छोटी-सी जाली लटका कर आया था. आज वह देखने जा रहा है कि उसमें दो चार मछली फंसी हैं कि नहीं. जब वह मछली लेकर वापस आ रहा था तो दिन का सूरज थक कर बांस और नदी किनारे 'खागरे' के झाड़ के ऊपर सुस्ता रहा था. आगे विद्याधरी का पानी अरुणाभ सूर्य की रोशनी में सागर से मिलकर ऐसे झिलमिला रहा था मानो दो बिछुड़े हुए दोस्त बहुत दिनों के बाद मिलकर अबीर से होली खेल रहे हैं. अचानक उसके पांव ठिठक गये.

जंगल में तो कभी भी कुछ भी हो सकता है, मगर यह आवाज़? नहीं, वह ग़लती कभी नहीं कर सकता. बनबीबी की संतान जो सुंदरवन में सांस लेते हुए बड़ा हुआ है, इस आवाज़ को पहचानने में उससे कभी चूक नहीं हो सकती. मगर बाघ है कहां?

फिर से दहाड़! तभी सिराजुल को लगा कि बाघ की यह दहाड़ जंगल के भीतर से न आकर ऐसे लग रहा है कि विद्याधरी के किनारे–किनारे रेंगते हुए चली आ रही है. वह चुपचाप खड़ा रहा. फिर नम मिट्टी पर बैठकर, जमीन पर कान लगाकर ध्यान से सुनता रहा. थोड़ी ही देर में उसका शक दूर हो गया. ओ तो यह बात है. कछुए पकड़ने के लिए जो गड्ढे खोद रक्खे गये हैं — उसी में से किसी बड़े गड्ढे में कोई बाघ गिर गया है. तो? अब?

पहले तो उसे लगा कि सिर पर पैर रख कर भाग चले. मगर पता नहीं क्यों आसमानी गुलाल से धरती पर ऐसा नशा टपक रहा था कि वह धीरे–धीरे उधर ही बढ़ा चला. फिर रेंगते हुए उस जगह जा पहुंचा जहां से दहाड़ आ रही थी. गड्ढे में झांका तो उसके बाल खड़े हो गये. अब क्या होगा? इसका क्या होगा? गांववाले तो बांस से पीट-पीट कर, कोंच-कोंच कर उसकी जान ले लेंगे.

गड्ढे के अंदर एक बाघ गिर गया था. सुंदरवन के दो सौ सत्तर बाघों में से एक. वह बारबार ऊपर उठने की कोशिश करता और फिसल कर नीचे चला जाता. गड्ढा इतना संकरा था कि वह दौड़ कर छलांग भी न लगा सकता था. ढलता हुआ सूरज मानो अपनी रोशनी से उसे आख़िरी सलाम भेज रहा था. उस आभा में उसकी पीली खाल की एक-एक स्याह लकीर चमक रही थी. सिराजुल मंत्रमुग्ध होकर देखता रहा. उस बाघ की दोनों आंखों में एक निष्फल ग़ुस्से के साथ–साथ मानो याचना झलक रही थी, ''अरे ओ आदमजात, तुम लोगों ने मेरे साथ ऐसा क्यों किया? अरे कोई है जो मुझे बचा ले ?''

बाघ का पेट कमर के पास धंसा हुआ नहीं था. बल्कि वहां कुछ उभार था. तो? तो क्या यह बाघ नहीं एक बाघिन है? और वह भी पेट से?

बैशाख के आने पर सुंदरवन के पेड़ों पर से जैसे अचानक काल वैशाखी का अंधड़ चलने लगता है, उसी तरह उसके मन में एक तूफ़ां उठ खड़ा हुआ. या अल्लाह! उसको मैं बचाऊंगा. जैसे भी हो —

मगर कैसे ?

वह उठा. पेड़ से दो तीन डालियां तोड़ीं. कमर में रक्खे चाकू से एक लतर को काट कर मज़बूती से उन शाखों को तीन चार जगह से बांधा. फिर उस गट्ठर को खींचते हुए गड्ढे के पास ले जाकर धीरे से नीचे उतार दिया और तुरंत भाग कर एक पेड़ पर चढ़ गया.

पहली बार तो बाघिन असफल हो गयी. मगर थोड़ी देर रुक कर फिर से प्रयास करने लगी. अबकी बार उसके नाखून डाली की गांठ और उस रस्सी जैसी लतर में फंसने लगे. फिसलते–फिसलते आख़िर वह ऊपर आने में कामयाब हो गयी. अब तक चौदहवीं का चांद भी आकाश में चमकने लगा था. जुन्हाई की बारिश में खड़ी होकर वह इधर-उधर देखने लगी, ''अरे मेरे मददगार, तू कहां है?''

सिराजुल कोई शायर न था, मगर उस अनोखे दृश्य ने उसे भी सराबोर कर दिया. पीछे विद्याधरी नदी सागर से मिलने जा रही है. सामने खड़ी है एक बाघिन — जो मां बनने वाली है. दूधिया जुन्हाई में उसकी खाल का पीला रंग मानो बारिश में भीगे बड़े-बड़े गेंदे की तरह चमक रही है. अल्लाह, तू ने यह क्या चीज़ बनायी है !

घर लौटकर जब मदीना को उसने सारी बात बतायी, तो मारे डर के पहले तो उसके मुंह से एक शब्द भी न निकला. फिर वह चीख़ने लगी,''अरे तुम्हारा सर फिर गया है? एक बाघिन के लिए अपनी जान जोख़िम में डालना.''

सिराजुल ने कुछ नहीं कहा. बात उस रात के लिए आयी गयी हो गयी. मगर दूसरे दिन दोपहर बाद जब वह सुंदरी पेड़वाली उसी जगह से मछली लेकर वापस आ रहा था, तो अचानक उसे बांस के पत्तों पर एक हल्की-सी सरसराहट

सुनायी पड़ी. आख़िर वह भी सुंदरवन का बेटा है. चौंककर उसने तिरछी निगाह से जंगल की ओर देखा, तो उसके हाथ–पांव ठंडे होने लगे. वही बाघिन पेड़ों के पीछे से दबे पांव उसके साथ-साथ चली आ रही थी. मानो वह कह रही थी, ''शुक्रिया दोस्त, जो तुमने कल मेरी जान बचायी.''

करना क्या चाहिए सिराजुल को कुछ समझ में नहीं आ रहा था. इतने में बाघिन किसी महारानी की तरह पीछे मुड़कर जंगल में अदृश्य हो गयी. इसके बाद वह डरते–डरते उस जगह जाता, मगर जाता ज़रूर. रोज. कुछ दिनों तक तो उस बाघिन का दर्शन नहीं हुआ. मगर एक दिन फिर उससे भेंट हो गयी. पर अबकी बार वह अकेली नहीं थी, उसके साथ तीन बच्चे भी थे. बच्चे म्यांव म्यांव कर खेल रहे थे. वह पीछे खड़ी थी. मानो यशोदा गदगद होकर बलराम और कन्हैया की शरारतें देख रही हो. सिराजुल ने अपने अंगोछे से दो तीन मछलियां निकालीं और वहीं रखकर चुपचाप चलता बना. उसके जाते ही बाघिन ने झपट कर मछलियां उठा लीं और लाकर शावकों के सामने डाल दीं.

आदमी आदमी में दोस्ती होने के लिए शायद लेन–देन के गणित का बहुत लेखा-जोखा करना पड़ता है. मगर यहां वैसी कोई बात न थी. पता नहीं कैसे और क्यों बाघिन उसे दूर से ही देखती. कहती कुछ नहीं. मगर पास भी नहीं आती. बच्चों को भी आने नहीं देती. सिराजुल की भी इतनी हिम्मत नहीं होती कि दूर से ही सही बच्चों को जरा पुचकारे. फिर भी इनमें भेंट होती रहती. अब तो उसने बाघिन का एक नाम भी दे दिया है — दुर्गा! दिनभर की मेहनत के बाद घंटा आधा घंटा इन्हें खेलते देखना मानो उसका एक नशा हो गया था.

सारी बातें सुनकर मदीना कभी सिर पीट लेती, तो कभी कुढ़ कर रह जाती,''अरे तुम बौरा गये हो? आख़िर वह आदमखोर है. आज तुम्हें छोड़ दिया. मगर कल? कल तुम्हारे ऊपर वह झपट नहीं पड़ेगी, यह कोई जानता है ? अरे तुम ऐसा क्यों कर रहे हो ? जंगल में मत जाया करो.''

''तो खाऊंगा क्या? शहद कहां से लाऊंगा?''

''कुछ दिनों के लिए जंगल में जाना छोड़ दो.''

''तू तो ऐसे मना कर रही है जैसे दुर्गा तेरी सौत है.''

''छिः छिः! जो मुंह में आये बकते हो?''

मगर बात की गाड़ी यहीं थमी नहीं. चलती रही. मदीना के मुंह से आसपास की औरतों में. फिर उनसे और दो चार जने जान गये. आख़िर काबुल शेख को भनक लग गयी और उससे लश्कर को. तो नृसिंह लश्कर ने काबुल से कहा, ''उस आदमी को पटाओ. मुझे कम से कम बाघ का एक बच्चा चाहिए. मार्केट में उसका हेवी डिमांड है.''

''मगर वह देगा नहीं, सा'ब.''

''उसका बाप देगा. चांदी की जूती पड़े तो लोग अपने बाप के मुंह पर भी थूक सकते हैं.''

और बस यहीं से शुरू हो गया काबुल शेख का बारबार सिराजुल के पास आना,''अरे मियां, तू मेरा दोस्त है, तभी तो कह रहा हूं. लश्कर बाबू की बात मान ले. किसी को कानों कान भनक तक नहीं पड़ेगी. वैसे फॉरेस्ट बाबू वगैरह सभी उन्हें जानते हैं. उनका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता. काफी दिनों से इन धंधों में हैं? पेड़ काटने का ठेका, तो झिंगवा मछली की 'खेती' से लेकर तरह-तरह की खालों की सप्लाई — क्या नहीं करते हैं?

''मैं दुर्गा से दगाबाजी करूं?'' सिराजुल बारबार झुंझला उठता.

''दुर्गा?'' काबुल दांत निपोड़ कर हंसने लगता, ''स्साले, तूझे यह नाम कहां से सूझा? कुरान के किस सूरे में है?'' फिर उसके कंधे पर हाथ रखकर, आवाज़ में थोड़ी मिसरी घोल कर कहता, ''घर में दो-दो बच्चे हैं. उनका भी सोच. कभी तो भरपेट माछ भात खिला भी न सका होगा. पांच हज़ार मिल जाये तो घर में एक हांड़ी रसगुल्ला जरूर ले जाना. क्यों?''

और इसी सिलसिले में वे आज भी आयेंगे. जाते-जाते लश्कर बाबू मदीना के हाथ में एक सौ का नोट भी थमा गये थे, ''घबड़ाना मत. यह मैं पांच हज़ार में से नहीं काटूंगा. तुम्हारे आदमी से कहो, मुझे उस बाघिन के बच्चे तक पहुंचा दे, बस. यह पेशगी नहीं है. यह तो तुम्हारी फ़ीस है. अलग से. कुछ हमारी होकर उसको समझाओ.''

और मदीना ने अपने मियां को इतना ज़्यादा समझाया कि सिराजुल कभी झल्लाकर तो कभी कुढकर रह गया. वह कभी रुंआसा होकर, नाक से पानी खींचकर, कभी आंखें मलकर, तो कभी आवाज़ ऊंची करके या रोकर कहती रहती, ''जिनगीभर तुमने कौन सा सुख दिया है? कम से कम दो दिन के लिए ही सही हमको हमारे बच्चों को हंस-खेल लेने दो. पेट भर जाने के बाद डकार कैसी होती है — यह भी तो हमने कभी नहीं जाना.''

और आज शाम को इसी नाटक का पुनराभिनय हो रहा था. सूरज जब जंगल के पच्छिम में बांसों के झुरमुट के

ऊपर अपने लाल घोड़ों पर सवार होकर वापस जा रहा था, तो उसी समय सिराजुल छेना घोष की दुकान में बैठे चाय पी रहा था. मदीना को तो उसके सारे अड्डे मालूम ही थे. ढूंढ़ते हुए पूछते हुए वहां जा पहुंची, ''तुम कितने दिन भागते रहोगे? अपना घर-द्वार भी छोड़ दोगे क्या? वापस चलो. शाम तक दोनों आनेवाले हैं.''

''अरे स्साली, तू मेरी बीबी है कि उनकी दलाल?''

''छिः!''

''सिराजुल'', उधर से छेना घोष ने कहा, ''घर की बातें घर में जाकर ही करो. मेरी दुकान पर नहीं.''

मदीना रास्ते भर भुनुर-भुनुर करती रही. घर आकर भी उसका राग अलापना बंद नहीं हुआ. छोटा बेटा छोटन को भूख लगी थी, ''अम्मां, जरा फरुई दो न.'' भुनभुना रहा था.

मदीना ने उसकी पीठ पर धम्म् से दो मुक्के जमाये,''अब मुझे खा जा, तब तेरी भूख मिटेगी. तेरे बाप ने तो लंगर खोल के रक्खा है, जो हर समय मैं राजभोग निकाल कर तुम लोगों के सामने सामने धर दूं.''

''अरे क्या कर रही है?'' जिस तरह राजा दशरथ को बीबी हठ के आगे घुटने टेकने पड़े थे, उसी तरह अब सिराजुल को भी हार माननी पड़ी, ''अच्छा ठीक है. मैं उनको वहां तक ले चलूंगा. मगर उसके आगे मेरी कोई ज़िम्मेदारी नहीं.''

मदीना ने होंठ तिरछे कर लिये. मन ही मन हंस दी— अरे यही बात पहले की होती तो बखेड़ा ही क्यों खड़ा होता?

बस अब क्या था? वही हुआ, जो होना था. रात तक काबुल शेख आकर उसे साथ ले गया. तीनों में बातचीत हो गयी. सारा बंदोबस्त हो गया. कल ही रात को निकलना है. जब वहां से निकलकर मुंह लटका कर सिराजुल घर की ओर चल दिया, उसी समय होटल के कमरे में बैठे नृसिंह लश्कर ने हंसते हुए काबुल से कहा, ''गिलास ला. आज तुझे विलायती पिलाते हैं.''

दूसरे दिन शाम ढलने के पहले ही तीनों जंगल में उस जगह धारा के पास पहुंच गये जहां सिराजुल पेड़ से जाल लटका कर रखता है. नृसिंह और काबुल एक पेड़ पर चढ़ गये. सिराजुल कह रहा था, ''पता नहीं आप लोगों को देख लेने से वह आयेगी भी कि नहीं!''

फिर दो चार मछली गमछे में बांध कर वह दूसरे पेड़ के नीचे बैठा रहा. मन ही मन वह हज़ारों बार ख़ुद को कोस रहा था. तड़प रहा था. ऐ ख़ुदा रहमान, तू ने आदम को बनाने के साथ साथ उसे उसका सबसे बड़ा दुश्मन — उसका पेट क्यों दिया? और वो भी दिल के ठीक नीचे?''

दुर्गा अभी तक न उसके पास आती, न बच्चों को ही उसके पास फटकने देती. सिराजुल थोड़ी दूर से ही उनके लिए मछली फेंक देता. बच्चे उसके लिए आपस में छीना झपटी करते. मां दूर खड़े उन्हें निहारती रहती — जिस तरह जसोदा पड़ोसनों की शिकायतें सुना करती थी, ''आज फिर तुम्हारे कन्हैया ने हमारे घर से दही और मक्खन चुरा कर खाया है.''

कभी-कभी जाड़े की उजली धूप में वह घास पर लेट जाती. मानो अटखेलियां कर रही हो, ''देखो मेरे हुस्न को तो देखो! तबियत भर गयी?'' फिर कभी चित लेटकर बच्चों को दूध पिलाने लगती और दोनों हाथ इस तरह मुंह के पास ले जाती जिस तरह नयी नयी मां बनने पर लड़कियां पल्ले से पर्दा करके बच्चे को छाती थमाती हैं.

मगर उस दिन दुर्गा आयी ही नहीं. शायद जंगल में शिकार की खोज में दूर चली गयी होगी. तीनों लौट चले. सिराजुल भुनभुना रहा था, ''अब मुझसे रोज़-रोज़ फालतू का आना नहीं होगा.''

अचानक नृसिंह ने अपनी रायफल उसके सर पर लगा दी, ''मैं जैसा कह रहा हूं, वैसा कर. दाम दूंगा. वरना ज़्यादा ज़्यादा पुनुर-पुनुर किया तो. यहीं तेरी लाश फेंक कर चले जायेंगे. थाने में रपट लिखा देंगे कि बाघ आकर पकड़ ले गया. और सचमुच बाघ सियार लाश खायेंगे ही. फिर कौन देखने जा रहा है कि तू गोली से मरा है कि उनके झपटने से?''

सिराजुल कांप रहा था.

नृसिंह बंदूक से उसे धकेलते हुए चलने लगा, ''और यह भी मत सोचना कि तू मर कर बच जायेगा. मैंने जो पांच हज़ार दिये हैं उसे वसूल करने के नाम पर मैं तेरी बीबी बच्चों को भी नहीं छोड़ूंगा. पुलिस उनके पीछे पड़ेगी. और साऊ सरकार चावल तो दूर दो रुपये का नमक भी नहीं देगा. यह भी बता दे रहा हूं.''

सिराजुल समझ गया.

सी, २६/३५-४०, रामकटोरा,
वाराणसी- २२१००१.
मो. ९४५५१६८३५९,
९१४०२१४४८९
ईमेल : asrc.vns@gmail.com

आमने-सामने

'लेखक का लोचन अपने लक्ष्य पर रहे, बस्स!'

डॉ. अमिताभ शंकर रायचौधरी

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन', कुंवर प्रेमिल, डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', डॉ. स्वाति तिवारी, डॉ. किशोर काबरा, मुकेश शर्मा, डॉ. निरुपमा राय, सैली बलजीत, पलाश विश्वास, डॉ. रमाकांत शर्मा, हितेश व्यास, डॉ. वासुदेव, दिलीप भाटिया, माला वर्मा, डॉ. सुरेंद्र गुप्त, सविता बजाज, डॉ. विवेक द्विवेदी, सुरभि बेहेरा, जयप्रकाश त्रिपाठी, डॉ. अशोक गुजराती, नीतू सुदीप्ति 'नित्या', राजम पिल्लै, सुषमा मुनींद्र, अशोक वशिष्ठ, जयराम सिंह गौर, माधव नागदा, वंदना शुक्ला, गिरिश पंकज, डॉ. हंसा दीप, कमलेश भारतीय और अजीत श्रीवास्तव से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है डॉ. अमिताभ शंकर रायचौधरी की आत्मरचना.

सच पूछिए तो मैं घबड़ा ही गया. कंठ गया सूख, वाणी हुई मूक! रात में मरीज़ों से छुट्टी मिलने पर घर के अंदर दाख़िल हुआ तो भार्या ने कहा, 'मुंबई से किसी का फ़ोन था. कह रहे थे कथाबिंब से हैं. फ़ोन कर लेने को कहा.' क्यों भाई - बात क्या है? फ़ोनियाने पर 'अरविंद'जी का आदेश — 'आमने सामने के कठघरे में हाज़िर हों!'

कहानी, कविता के नाम पर किसी विषय, व्यक्ति या घटना आदि पर बांचना एक बात है और खुद अपने सम्मुखीन होना — अरे बापरे! दर्शन का सूत्र वाक्य है — आत्मानाम् विद्धि जनो दाई सेल्फ! तो जिसने स्वयं को जान लिया उसने तो शायद जगत् को जान लिया. संपादक का कथन है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है. तो, आत्मकथ्य सुनाने को दिल है बेताब / चाय की प्याली तो उठा लीजिए जनाब!

माधव नागदा ने लिखा है, 'मैं शब्द की ताकत को प्रणाम करता हूं.' उनके 'माटसाब' ब्रजेशजी ने उनसे कहा था,'साधारण व्यक्ति भी कहानियां लिख सकता है.' ('कथाबिंब', जन. मार्च '१७)

तो अपने बचपन की एक घटना से मंगलाचरण करता हूं.

'नहीं, मैं रोटी नहीं खाऊंगा. मुझे भी पराठा दो न.' रसोई के दरवाज़े पर खड़ा-खड़ा मैं अड़िअल टट्टू की तरह भुनभुना रहा था.

जंग इस बात को लेकर छिड़ी हुई थी कि रोज़ सुबह नाश्ते में बड़ों को ही क्यों पराठे मिलते हैं, हम्में क्यों नहीं? मैं शायद तीन चार साल का था. लगा अपनी मांग का झंडा फहराने.

मां वैसे ही सुबह से संयुक्त परिवार की गृहस्थी की

चक्की में पिस रही थी. इसको कॉलेज़ जाने के पहले खाना दो. उसको नाश्ता दो. तब तक दादी पूजा करके आ जातीं, चाय देने में देर हो तो वह नाराज़. मुंह में पान जमा लेंगी. फिर कौन माई का लाल उन्हें नाश्ता करवा सकता था? डिस्पेंसरी के लिए मेरे पिताजी को निकलना था — तमाम जिम्मेदारियों की थपेड़ों से लोहा लेती अकेली मां. फिर भी उन्होंने इस नालायक को काफ़ी समझाया. मगर मैं ठहरा कुत्ते की दुम. सीधी न होए. आख़िर वह झुंझला गयीं, 'नहीं नाश्ता करना है तो जा, निकल जा यहां से...!'

फिर भी मेरी पें पें - शहनाई लगी बजने. (आख़िर बिस्मिल्लाह ख़ान का नगर निवासी हूं, भैया!)

मारे ग़ुस्से के मां ने एक कांसे का गिलास उठा कर दे मारा मेरे सिर पर, ठीक जैसे बैट्समैन को स्टंप ऑउट करने के लिए फील्डर दन्न से बॉल फेंकता है, उसी तरह ...

बस फिर क्या था? सिर फूट गया. मां मुझे गोद में लेकर रोने लगीं. दादी ग़ुस्सा कर रही थीं, यह मां है या सौतेली मां? बच्चे ने जरा पराठा क्या मांग लिया, उसका इतना बड़ा दंड? छिः!'

सुनते हैं, बाबूजी ने मां के इस अपराध के लिए कई दिनों तक उनसे बात तक नहीं की. उनका परोसा हुआ खाना नहीं खाते थे. इसी तरह एक संयुक्त परिवार में मेरी परवरिश हो रही थी. दादा–दादी का प्यारा — पहला पोता. उधर ननिहाल में भी सबसे बड़ा नाती.

वैसे तो मेरा जन्म बिहार के एक छोटे से क़स्बे जलालपुर में हुआ, मगर मैं पला बढ़ा बनारस में. एक पक्का बनारसी. मंदिर नगरी काशी की हृदयस्थली गोदौलिया से सटा एक मुहल्ला है — जंगमबाड़ी, वहीं मेरे दादाजी का मकान है. मेरे बचपन का पहला अंक, पहला दृश्य वहीं से शुरू होता है. फिर बाबूजी ने लहुराबीर के पास रामकटोरा में नया मकान बनाया. हम तीनों भाइयों को लेकर बाबूजी माताजी वहीं चले आये. उस समय मैं दर्ज़ा सात में था. पिताजी की डिस्पेंसरी नये मकान के नजदीक थी. उन दिनों वहां खास कोई आवासीय मकान था नहीं. वहीं हम तीनों भाइयों ने सुअर चरते देखा तो 'मुग्ध' हो गये. और उसी चक्कर में मेरे छोटे भाई का एक्सिडेंट हो गया. नये मकान में आने के सात दिनों के अंदर ही उसका पैर टूट गया. अब लीजिए..... जो जो अपशकुन की बातें होती हैं...

मेरे नानाजी रेल्वे में सहायक स्टेशन मास्टर के पद पर तैनात थे. तो मेरे जन्म के पहले मां मैके गयी हुई थी. बड़की मौसी बताती है कि कैसे मेरें मंझले मामा, जो मेरी मां के ठीक बाद की संतान थे, बचपन में मां के साथ रोज़ जिनकी रार लगी रहती थी, वे आधी रात गये भीतर बाहर लेफ़्ट राइट कर रहे थे और भुनभुना रहे थे, 'पता नहीं कब दीदी का बच्चा होगा. बेचारी इतनी तकलीफ़ झेल रही है. इधर मुझे भी नींद आ रही है...'

उस समय उनकी उमर कितनी रही होगी? यही कोई सोलह सत्तरह.

साहित्य की ओर मेरी रुझान कैसे हुई? वो भी तब, जब मैं ठहरा एक एम. बी. बी. एस. ग्रेजुएट. वैसे कहा जाये तो चेखव, सॉमरसेट मॉम, बनफूल (डा. बलाईचॉद मुखोपाध्याय) या दोस्ती और ममता फिल्म के लेखक डॉ. नीहाररंजन गुप्त से लेकर आज के खालिद होशैनी (अफगानिस्तान : काईट रनर, और ए थाउजेंड स्प्लेन्डिड सन्स् के उपन्यासकार) तक सभी तो शिक्षा या पेशे से डॉक्टर हैं. ख़ैर, जवाब यही है कि शायद बचपन में ही मेरे अंदर इसका बीजारोपण हो गया था.

'दादी, एक कहानी सुनाओ न.' मौक़ा मिलते ही मैं चिपक जाता, या दोपहर को जब बाबूजी सोने को कहते तो उनके सीने से सट कर यह सौदा पटाता कि,'पहले एक कहानी सुनाइए-!' तो यहीं से बिस्मिल्लाह हुआ होगा. बाबूजी टार्जन या कासाबियांका की कहानी सुनाते. फेलिसिया डॉरोथी हेमैंस ने कासाबियांका पर एक लंबी कविता लिखी है. वह एक छोटा लड़का था, जो अपने पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए जलते जहाज का डेक छोड़कर नहीं जाता. उसके डैडी ने उससे कहा था, 'तू यहीं ठहर. मैं जब तक न आऊं, यहां से हिलना नहीं.' कुछ कुछ आरुणि उद्दालक की कहानी जैसी.

मेरे अपने दादा–दादी के अलावा बाबूजी की एक बाल विधवा बुआ थीं. दादाजी के मंझले छोटे भाई, जिन्हें हम बड़ोदादू कहकर पुकारते थे — उन्हीं के यहां वह रहती थीं. बड़ो दादू का प्रेस चलता था. बाहर खड़े होकर कागजों में छपाई होते देखने में बड़ा मज़ा आता था. ऊपर रंगवाला प्लेट घूम रहा है. उसके ऊपर से रोलर ऊपर नीचे हो रहा है. मशीन मैन दो पाटों के बीच एक-एक कागज़ डाल रहा है. और लो, वही कागज़ छप कर बाहर आकर गिर रहा है. जैसे कोई जादू हो!

तो मौक़ा मिलते ही मैं उन बुआ दादी के पास पहुंच जाता — 'कहो कहानी राजा रानी, नाऊ चंट या एक ज्ञानी.'

फिर आंखों के सामने एक फिल्म चलने लगती...

एक राजा की सात रानियां थीं. मगर एक भी औलाद नहीं. सिर्फ़ सबसे छोटी रानी को ही एक-एक करके सात बेटे और एक बेटी हुई. मारे जलन के सौतेली माताओं ने उन्हें राजमहल के बग़ीचे में गढ़वा दिया. राजा को भनक भी न लगी. फिर आगे किसी अवसर पर पूजा के लिए माली जब फूल चुनने आया तो सारे पेड़ ऊपर उठ गये. माली क्या करे? छह रानियों में कोई भी फूल न पा सकीं. आख़िर जब छोटी रानी आयी तो वे फूल उनके बेटे बेटी बनकर उनकी गोद में कूद पड़े. फिर? पर्दाफाश. पापियों को सज़ा.

कहहिं पुरातन कथा कहानी. सुनहिं लखनु सिय अति सुखु मानी. (मानस). राम प्राचीन कथा और क़िस्से सुनाते रहे, सीता और लक्ष्मण उन्हें प्रेम से सुनते रहे... तो यही है कहानी 'चालीसा.'

आख़िर आदमी लिखता क्यों है? अफ़साना निगार बनने की ज़रूरत ही क्या है? तो सुनिए डॉ. सुरेंद्र गुप्त क्या कहते हैं :- '...कहने को तो प्रत्येक लेखक अपने लेखन को स्वांतः सुखाय कहता है ... पर ... सच्चाई तो यह है कि आज का लेखक आत्मतुष्टि के साथ-साथ साहित्यिक जगत में ख्याति प्राप्त करने अथवा अपनी पहचान बनाने के लिए ज़मीन तलाश करने में सक्रिय रहा है. कहीं न कहीं अर्थोपार्जन का सत्य भी जुड़ा हुआ है.' (कथाबिंब' अक्तू-दिसं. '१३)

अगर आप मुझसे पूछते हैं कि मैं क्यों लिखता हूं? तो इसका जवाब एक 'आह' और एक 'वाह' में समाहित है. इस समाज में जो कुछ मैं देख रहा हूं, स्वाभाविक है उसकी प्रतिक्रिया मेरे अंदर होती है. मैं उसे लोगों को बताना चाहता हूं. अंधेरे को अनगिनत अभिशाप देने से अच्छा है कि हम एक दीया जलायें. एक नये बिहान को लाने में लोग कटिबद्ध हों. केवल इतना ही नहीं, अगर मेरी हास्य कहानी से एक थके हारे इन्सान को थोड़ा सुकून मिल जाये, थोड़ी देर के लिए ही सही एक निर्मल आनंद की सौगात मिल जाये, तो मैं समझूं कि मेरी क़लम ने अपनी जिम्मेदारी निभा ली है. कवि रामदरश मिश्र की पंक्तियां कुछ इस प्रकार है : 'छोड़ जाऊंगा/कुछ कविताएं, कुछ कहानियां, कुछ विचार/जिनमें होंगे/कुछ प्यार के फूल/कुछ तुम्हारे दर्द की कथाएं/कुछ समय-चिंताएं.' यह तो हुई 'आह' की बात. हम अपने दुख और तकलीफ़ों के लिए केवल नौहःख्वानी ही न करें. उसके लिए कुछ सोचें, कुछ करें.

और 'वाह' में शामिल है कि हमने जो लिखा उसे लोग पढ़ें, उसके बारे में कुछ कहें. भला हो या बुरा. उस बसंती हवा के बहने से क्या फ़ायदा जिससे एक पत्ता भी न हिला? दाद के बिना ग़ज़ल की महफिल ज़िंदा रहे कैसे? फिर इसी उम्मीद के साथ मैं लिखता हूं कि इनको पढ़ने से आगे आनेवाली नस्ल की राहे ज़िंदगी कुछ आसान हो. कम से कम अंधेरी सुरंग में उनको एक रोशनी का इशारा तो मिले. जब वे थके हारे हों या किसी सफ़र में शामिल हों तो ये कहानियां उनको थोड़ा ही सही, सुकून दें.

लेखकीय लक्ष्य का एक और पक्ष — अमृत लाल नागर के शब्दों में : -'मेरे लिए तो सबसे बड़ा पुरस्कार है - मेरे पाठकों से मिलनेवाली सराहना और प्यार और मेरी रचनाओं से मिलनेवाली रॉयल्टी. मेरी दिली तमन्ना है कि पूरी तरह सिर्फ़ अपने लेखन से मिलनेवाली रॉयल्टी के बलबूते जीवन निर्वाह कर सकूं.' (सृजन सरोकार. जुलाई/ सितं. २०१८) क्या कहूं? हाय! रोशनी की ख़्वाहिश मेरे दिल में भी थी/ अंधेरे के सिवा मगर कुछ हाथ न लगा!

'हर इक दौर में हम, हर ज़माने में हम/ ज़हर पीते रहे, गीत गाते रहे.'(फ़ैज अहमद फ़ैज़)

फिर भी ध्यान रहे, 'कोई भी लेखक यह नहीं कह सकता कि वह जैसा चाहता है उसकी रचना उसी तरह इस जमाने को बदल कर रख देगी. परंतु इंसानियत और इस धरती माता के प्रति अपनी जिम्मेदारी से वह बच भी तो नहीं सकता... एक कविता तो शांति के लिए कामना या प्रार्थना ही है!'(- ओ. एन. वी. कुरुपःमलायली)

मैं किन कथाकारों से प्रभावित हुआ हूं — अगर कोई मुझसे यह सवाल करे, तो इस संदर्भ में मैं सबसे पहले रवींद्रनाथ ठाकुर और शरत् चंद्र का ही नाम लूंगा. रवींद्रनाथ का 'गल्पगुच्छ' तो हम जैसों के लिए बार-बार पढ़ने की 'शैक्षणिक पुस्तक' है. फिर भी बचपन में जिन क़िताबों को पढ़ते हुए कहानी की सरिता में गोता लगाना शुरू किया था वे हैं — रामायण, महाभारत, बंगाल की लोक कथाएं और छह आना, आठ आने में मिलनेवाली सपनकुमार की डिटेक्टिव किताबें. फिर आगे चलकर गुलेरी, प्रेमचंद, सुदर्शन,'कौशिक'. गोदान पढ़ा, मानसरोवर ले आया. इसके अलावा चेखव,

मोपासां और गोर्की तो हैं ही. कहानी कैसे शुरू करें और कैसे इसका अंत हो यह समझने के लिए तो चेखव और मोपासां को पलटना ही पड़ेगा. फिर बांग्ला के सैयद मुज़तबा अली से मैंने जाना कि किस तरह गंभीर विषयों को भी अड्डे का तड़का लगाकर पेश किया जा सकता है. ताराशंकर, विभूति भूषण, सुनील गंगोपाध्याय भी मेरे प्रिय लेखकों में से हैं. इधर रेणु, जैनेंद्र, निराला और दुष्यंत कुमार आदि तो हैं ही. एक बनारसी होने के नाते शिव प्रसाद मिश्र की 'बहती गंगा' में गोता लगाना तो मेरा पुनीत कर्त्तव्य रहा, फिर 'निर्गुण', और काशीनाथ सिंह के उपन्यास 'काशी का अस्सी', उनकी कहानियां, आत्मकथात्मक रचना 'घर का जोगी जोगड़ा' या 'आछे दिन पाछे गये' आदि तो हैं ही. इनके अलावा मलयालम् लेखक ताकाशी शिवशंकर पिल्लई हों या राजस्थान के विजयदान देथा - सभी का मैं मुरीद हूं. फिर सर आर्थर कॉनन डॉयल हों या ओ. हेनरी — इनसे सीखी जा सकती है कि कहानी की बुनावट कैसी हो. डिटेक्टिव अर्क्यूल पॉयरो की सृष्टा आगाथा को तो मैं हर समय सलाम करता हूं.

और हां, हिंदी के प्रसिद्ध बाल साहित्यकार श्रीप्रसाद जी के संग रहते हुए मैंने बहुत कुछ सीखा. व्यक्तिगत रूप से उनका तो मैं ताउम्र आभारी रहूंगा. मैं अपनी कहानी लिख कर उनके पास ले जाता और वे उसे धैर्यपूर्वक सुनकर अपना मंतव्य देते. साथ में श्रीप्रसाद के घर में चाय का परसाद. मुझे यह स्वीकारने में ज़रा भी झिझक नहीं कि विश्व साहित्य के महासागर से अब तक अंजुली भर भी मैं पी न सका. फिर मुझे अपने 'माछी-भात'/प्रोफ़ेशन के लिए भी तो कुछ पन्ने पलटने हैं. मैं कोई रात-रात जाग कर पढ़नेवाला 'जाग्रत पाठक' तो हूं नहीं.

एक सवाल उठता है कहानी का कथ्य/कथानक और उसकी कलात्मकता यानी भाषा, बुनावट आदि पर. दोनों में ताल मेल कैसा हो?

'मुसइ चा' की शुरुआत काशीनाथ सिंह यूं करते हैं:- 'यह कहानी ही नहीं है क्योंकि इसमें कोई सिलसिला नहीं है.' कहानी शब्द का अर्थ ही है कथा. तो कथानक के बिना कहानी तो जैसे बिन स्केलिटन कंकाल — हड्डियों के ढांचे से शरीर की कल्पना होगी. अंग्रेज़ी का शब्द 'स्टोरी' का मूल है 'एस्टोरी' (फ्रेंच) और 'हिस्टोरिया' (लैटिन). यानी मुझे कोई कथा बांचनी है, तभी तो मैं कहानी लिख रहा हूं. मैं लोगों को कुछ सुनाना चाहता हूं, चाहे किसी विषय पर पाठकों के साथ अपनी भावना शेयर करना चाहता हूं, तभी तो मैंने यह बीड़ा उठाया है. जहां तक उसमें कलात्मक संतुलन की बात है तो यह तो स्वाभाविक है कि कहानी में अगर घटना प्रवाह न हो, उसके शब्दों में अगर मिठास न हो, वे अगर दिल को छू न ले, उनमें अगर कोई नयी बात या नया मुहावरा न हो तो कोई पाठक उसे पढ़ेगा ही क्यों? कोई उसे सुनेगा ही क्यों? फिर भी कहानी का कथ्य और उसकी रूप-सज्जा में अलग से कोई तेल-जल का संपर्क तो है नहीं कि दोनों (मुक्तिबोध की कविता के) बिगड़ैल बिल्लों की तरह अलग-अलग दिखें. दोनों को आपस में घुल-मिल जाना चाहिए. एक किसान जब खेत जोतने जाता है तो वह प्रायः नंगे बदन होता है या उसके तन पर एक मामूली कमीज़ भर होती है, पर जब वह किसी विवाहोत्सव में शामिल होने जाता है तो सर पर पगड़ी बांध लेता है और उसकी वेशभूषा बिलकुल अलग होती है. उसी तरह एक लड़का जब स्कूल जाता है तो वह स्कूल ड्रेस पहने होता है, पर जब वह खेल के मैदान में जाता है तो उसका पहनावा अलग हो जाता है. कथ्य एवं कला में एक द्वंद्वात्मक ऐक्य का संबंध ही काम्य है. गाड़ी को भली भांति चलने के लिए ब्रेक आवश्यक है, मगर ब्रेक बराबर लगा रहे तो गाड़ी चले कैसे? भले पाणिनि व्याकरण के सृष्टा रहे हों, मगर वे कालिदास नहीं थे. फिर भी लेखकीय कल्पना व प्रतिभा को आप किसी ख़ाके के अंदर बंद नहीं कर सकते. उसके लिए आलोचक रूपी 'अंपायर' तो हैं ही, साथ ही पाठकों की 'थर्ड आई' भी तो है. वो किसी को नहीं बख़्शेगी. भगीरथ से किसी ने नहीं कहा था कि वे गंगा को किन-किन रास्तों से होकर ले जायें. उनके सामने तो बस एक मक़सद था — अपने पुरखों सगर-पुत्रों का उद्धार! वे चलते गये. इस दरिया ए दास्तान को भी बहने दें. लेखक का लोचन अपने लक्ष्य पर रहे, बस!

कथावस्तु और कथासज्जा के संदर्भ में विंदा करंदीकर कहती हैं — 'किसी भी सर्जनात्मक साहित्यिक कृति का मेरा मूल्यांकन मुख्यतः इस दृष्टि (विजन) की मौलिकता, गहराई और सर्वांगीणता से तय होता है, फॉर्म की महत्ता से मैं इनकार नहीं करता, लेकिन यह इस साध्य का एक साधन मात्र है, स्वयं साध्य नहीं.' (बहुवचन ६०)

अब कृष्णा सोबती की जीवन-दृष्टि से ज़रा रुबरू हो

लें — 'किसी भी रचनाकार के लिए उसकी जीवन-दृष्टि अन्य सब लेखकीय उपकरणों से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है.' (बहुवचन ६०).

रवींद्रनाथ ने श्री चारुचंद्र दत्त को समर्पित एक कविता लिखी है. जिसमें उन्होंने लिखा है कहानी कैसी हो. कहानीकार का स्वधर्म क्या है? तो मेरे अपटु अनुवाद में उसका कुछ अंश ऐसा है.

'तुम सजा सकते हो कहानी की महफ़िल /..... इंसान का वो परिचय ...../ जो मामूली होते हुए भी सत्य से सराबोर है / तुम्हारी नज़रों से ओझल हुआ नहीं./ तुम्हारे दिमाग़ में पोथीवाली विद्या भरी रहने के बावजूद / तुमने इन्सानों की जीवन यात्रा से लिया बहुत कुछ. ....

'तुम इंसानों के हमदर्द हो/ जो इंसान राह चलते चलते थक कर चूर हो जाता है!/ सुख–दुख के दुर्गम रास्तों में जो/जाने अंजाने फंस कर रह जाता,/ वो इंसान जो जीना चाहता / वो इंसान जो किस्मत का प्यादा बनकर मौत को गले लगाता!/ राजा हो या रंक/ ऐसे लोगों की कहानी सुनना तो हर किसी को है पसंद!'

ध्यान रखिएगा जनाब — कहानी की रचना इंसानों के द्वारा ही होती है. कहानी लोगों के लिए लिखी जाती है. और लोगों के द्वारा ही इसका प्रसार होता है. पंचतंत्र के करतक और दमनक अरब पहुंचते–पहुंचते कलीलाह और दिम्नाह बन जाते हैं. जातक कथा की कथा कैंटरबेरी टेल्स (चॅसार रचित) में झांकने लगती है. (हिंदू मैगज़ीन: २१.४.१९.)

तो महफ़िल की बत्ती बुझाने से पहले — गुलजार के शब्दों में 'मैं एक लालची शायर हूं. चाहे मीठा हो, खट्टा हो या कड़वा, मैं तो हमेशा ज़िन्दगी को चबाता रहता हूं.' (हिंदूः अंग्रेजीः ३१.१२.१३.)

हेगेल ने कहा है कि साहित्य की एक ग़ज़ब की ताकत यह है कि यह बाहृय जगत और अंतर जगत को मिला कर रख देता है. यूरी बोरेव ने 'एस्थेटिक्स' के 'लिटरेचर' में लिखा है — सच्चे साहित्य का शाश्वत आदर्श है लोगों को आनंद देना, समाज को सही रास्ते में ले चलना. और इंसान की कीमत पर नहीं, बल्कि उसी के माध्यम से यह काम करना है! (पृ : २५५)

सिर्फ शायर देखता है कहकहों की असलियत, हर किसी के पास तो ऐसी नजर होगी नहीं. (साये में धूप)

मेरा सतत प्रयास यही रहा, और आगे भी रहेगा - ज़िंदगी की यह अंधी सुरंग किसी उजाले में ही खुलती है, यह बताना. सौ बार अंधेरे को धिक्कारने से बेहतर है एक दिया जलाना!

पता नहीं इसमें मैं कितना सफल हो पाया हूं...

शब्दों की राह पे चलते-चलते कुछ गुल खिलते जायेंगे

कविता कहानी कोई नाम दो, उन्हें महकते पायेंगे!

सी, २६/३५-४०, रामकटोरा,
वाराणसी- २२१००१.
मो. ९४५५१६८३५९,
९१४०२१४४८९
ईमेल : asrc.vns@gmail.com

लघुकथा

ईमानदार

डॉ. नरेंद्र नाथ लाहा

दिल्ली में ऑटो पर सवार हुआ तो पास पड़े एक लेडीज़ बैग पर नज़र पड़ी. मैंने चालक का ध्यान आकर्षित किया. उसने लेडीज़ बैग खोलकर महिला का नाम पढ़ा और मुझसे बोला, 'पास ही का पता है, चलकर वापस दे आते हैं. यदि आप साथ चलें तो अच्छा रहेगा.'

महिला घर पर ही मिल गयी. खासी परेशान थी. हैंड बैग पाकर उसने उसे खोला और पाया कि सब ठीक-ठाक था. उसने चालक से कहा, 'इनाम ले लो.'

चालक ने जवाब दिया, 'मुझे केवल बीस रुपए दे दें जो आपके घर तक पहुंचने में ख़र्च हुए हैं.'

सब स्तब्ध रह गये.

२७, ललितपुर कॉलोनी,
डॉ. पी.एन. लाहा मार्ग,
ग्वालियर- ४७४००९ (म. प्र.).
मो. : ९७५३६९८२४०

लघुकथा

सिंह साहब

✍ आनंद बिल्थरे

छुट्टियों में गांव आये, इन्स्पेक्टर सिंह, सुबह की सैर से, वापिस लौट रहे थे. रास्ते में उन्हें, उप-सरपंच हरदयाल और सचिव, सोमेश्वर चौधरी, जंगल की ओर जाते दिखायी दिये. एक के हाथ में लोटा था और दूसरे के डिब्बा. दोनों बीड़ी फूंकते, हंस-हंस कर, आपस में बतिया रहे थे. इन्स्पेक्टर ने मोबाइल से दोनों की तस्वीर उतार ली.

इन्स्पेक्टर को पहचान कर उप-सरपंच ने कहा,

- अरे, सिंह साहब, कब आये?

- आया तो मैं, रात में ही था. लेकिन यह बताइए, आप दोनों लोटा और डिब्बा लेकर कहां जा रहे हैं?

- शौच के लिए.

- किंतु गांव को तो सरकार ने शौचमुक्त घोषित कर दिया है. सुना है. पंचायत में पुरस्कार की राशि भी आ चुकी है?

- ऐसा है सिंह साहब, अभी शौचालय का थोड़ा काम बाक़ी है. शीघ्र ही पूर्ण हो जायेगा.

- और ये तमाम लोग, बहू-बेटियां, जो लोटा, लेकर आ रहे हैं, क्या उनके भी शौचालय का काम अपूर्ण है? दोनों एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे.

- अगर आप कहें तो आपकी तस्वीर कलेक्टर साहब को भिजवा दूं? दोनों गिड़गिड़ाने लगे.

- जिस काम के लिए, सरकार भी आपका, सहयोग कर रही है, समझ नहीं आता, आप उसमें रुचि क्यों नहीं लेते.

- दोनों ने कान को हाथ लगाकर वचन दिया कि वे अब, पूरी दिलचस्पी से अधूरे पड़े, शौचालयों का कार्य पूर्ण करवायेंगे और सही माने में गांव को शौचमुक्त करवाकर दम लेंगे.

... देखें सिंह साहब को अगली छुट्टी में गांव का क्या नज़ारा देखने मिलता है.

प्रेमनगर,
बालाघाट-४८१००१ (म. प्र.)

कविता

बबूल वाले गांव

✍ आनंद तिवारी पौराणिक

सुकून को तलाशते, बबूल वाले गांव।
बीहड़ों के रास्ते, बिवाई वाले पांव।।
उदास मन हो गये पलाश के ये वन,
कैक्टस चुभ रहे, नीम वाले छांव।
सुकून को तलाशते, बबूल वाले गांव।

मंजीरे, मृदंग ने खो दिये हैं स्वर,
मटमैली गंध पर, मौसम के दांव।।
सुकून को तलाशते, बबूल वाले गांव।

अमराई ढूंढ़ रही, पपीहे का गीत,
कौओं का बसेरा है बस कांव-कांव।
हादसों के रूदन-गान, चौपाल गा रहे,
कतरा भर आंसू, बचा न कोई ठांव।।
सुकून को तलाशते, बबूल वाले गांव।

दुःखों से भर गये, खलिहान खेत,
क्षत-विक्षत है झोपड़ी, बुझे हुये अलाव।
गंध थी अमोल कभी मेरे गांव की
सरे आम बिक गयी, कौड़ियों के भाव।।
सुकून को तलाशते, बबूल वाले गांव।

होरी और धनिया, यह पूछते सवाल,
हर निग़ाह कर रही, अपना बचाव।
कौन हे ये भला कब हुआ, क्यों हुआ।
अपनों से अपनों का इतना दुराव।।
सुकून को तलाशते, बबूल वाले गांव।

श्रीराम टाकीज मार्ग,
महासमुंद-४९३४४५ (छ. ग.)

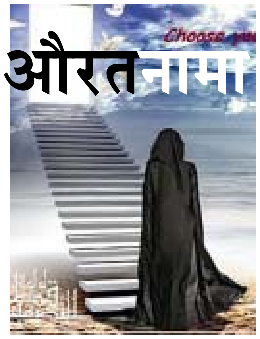

'भारत' की गायिका-'रत्न'-एम. सुब्बुलक्ष्मी

डॉ. राजम पिल्लै

'कौसल्या सुप्रजा राम पूर्वा संध्या प्रवर्तते ।
उत्तिष्ठ नरशार्दूल कर्तव्यम् दैवमाह्निकम् ।।१।।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविंद उत्तिष्ठ गरुडध्वज ।
उत्तिष्ठ कमलाकांत त्रैलोक्यं मंगलम् कुरु ।।२।।'

श्री वेंकटाचलपति श्री वेंकटेश को आह्वान करता हुआ 'सुप्रभातम स्तोत्र' दशकों-सदियों से दक्षिण-भारत के घरों में प्रभात काल की अगवानी करने के लिए वयस्कों-वृद्धों-गृहस्थों द्वारा श्रद्धापूर्वक उच्चारित होता आया है. अनेक गान-कुशल गायकों ने इसे गाया भी है. आज विश्व-भर में फैले हुए दक्षिण-भारतीय, पूजा-अर्चना परंपरा को मान्यता देनेवाले परिवारों में आधुनिकतम यंत्रों द्वारा रिकार्ड किये गये साधनों के माध्यम से यह 'सुप्रभातम्' सुना-सुनाया जाता है. दशक पर दशक बीत गये, प्रयोगों पर प्रयोग होते गये लेकिन 'श्री वेंकटेश सुप्रभातम्' कहते ही कानों में मन-मस्तिष्क में जो भाव-तरंगें बनती हैं उनमें एक ही स्वर बार-बार प्रतिध्वनित होता है और वह स्वर है — 'एम एस' का! मदुरै षण्मुखवडिवु सुब्बुलक्ष्मी का! 'सुस्वरलक्ष्मी' 'स्वर साम्राज्ञी', 'भारत-रत्न'-सुब्बुलक्ष्मी का!

जन्मजात 'वरदान' और 'अभिशाप!' :

सुब्बुलक्ष्मी का जन्म १६ सितंबर १९१६ को मद्रास प्रेसिडेंसी (वर्तमान तमिलनाडु) के मदुरै शहर में हुआ. उनकी माता का नाम था — षण्मुखवडिवु अम्माल, जो एक कुशल वीणा-वादक थीं. उनकी नानी अक्कम्माल, एक कुशल वायलिन-वादक थीं.

सुब्बुलक्ष्मी को जन्मजात वरदान के रूप में मिला — आकर्षक रूप और गायन-वादन की सहज प्रतिभा! लेकिन 'देवदासी' परिवार में जन्म लेने की वजह से मिला वज्रशलाकाओं से निर्मित कारागार में आजन्म आवास का दंड-अभिशाप!

'देवदासी' को उतना भी सामाजिक सम्मान और अधिकार प्राप्त नहीं था जो किसी सामान्य खेतिहर या मजदूर की मां, बेटी, पत्नी को मिलता था. पारंपरिक समाज में किसी स्त्री के लिए मर्मांतक शोक और भय का विषय होता है विधवा होना लेकिन देवदासी कभी विधवा नहीं होती थी, वह आमृत्यु मंगलामुखी होती थी, देवालयों, राजसभाओं के उत्सवों में उसे मंगलकलश के साथ अग्रिम पंक्तियों में रखा जाता था क्योंकि उसके कंठ में जो सुहाग-चिह्न-मंगलसूत्र होता था वह किसी अविनासी देवता के साथ विवाह का सूचक होता था! वह कभी 'विधवा' नहीं, होती थी क्योंकि सामाजिक शब्दावली में वह 'सधवा' भी कभी नहीं होती थी. वह किसी उच्च-वर्ण वर्ग के संपन्न प्रतिष्ठित पुरुष की संरक्षिका मात्र बन सकती थी. उसके बच्चों को न पिता का नाम मिलता था न संपत्ति पर अधिकार. वे पिता नहीं माता के नाम से जाने जाते थे. कन्या वयस में ही देवता की सेवा के लिए अर्पित लड़कियों को उनकी योग्यता के अनुरूप गायन-वादन-नृत्य कलाओं का प्रशिक्षण दिया जाता था क्योंकि यह देव-सेवा का एक अंग था. वे देवता के समक्ष अपनी कलाओं का प्रदर्शन भक्ति-भाव से करती थीं और अघोषित रूप से यह भी मान ही लिया जाता था कि उनका यह प्रदर्शन सभागार में

उपस्थित देवालयों-देवस्थानों के उच्च अधिकारियों श्रेष्ठियों, राजवंश के पुरुष सदस्यों की सराहना और सम्मान पाने का एक माध्यम भी था. देवालयों को दान-अनुदान के रूप में विपुल धन, करमुक्त भूमि आदि के प्रदाता ये ही लोग तो थे. इन्हीं की कृपादृष्टि से देवदासियां स्वयं भी सुख-सुविधा का जीवन बिता पाती थीं. प्रौढ़ावस्था आते-आते वह अपनी पुत्री आदि किसी पारिवारिक सदस्य को उत्तराधिकारी बना जाती थी और यों मातृसत्ताक व्यवस्था का अंग न होते हुए भी माता-पुत्री के माध्यम से देवदासी परिवार का आयोजन-नियमन होता था. यह परंपरा सदियों से अटूट श्रृंखला की तरह चली आयी थी और लगता यही था कि आगामी सदियों तक चलती रहेगी.

डॉ. राजम पिल्लै

मदुरै षण्मुखवडिवु अम्माल भी इसी विश्वास के साथ अपनी भविष्य-निधि योजना में अनवरत निवेश करती जा रही थीं — अपनी दो बेटियों वडिवांबाल और सुब्बुलक्ष्मी में. उन्हें सुब्बुलक्ष्मी से ज़्यादा अपेक्षाएं थीं. लगभग प्रारंभिक किशोरावस्था से ही वह बग़ैर किसी गुरू के ही, सुरों को बांध लेती थी, कंठ इतना स्पष्ट और सुरीला था कि कालांतर में एक विख्यात संगीत विद्वान ने कहा कि इसके कंठ में वीणा है, यह तो सरस्वती पुत्री है. मां को लगा वह एक सोने की खदान की स्वामिनी है. वर्तमान निश्चित और भविष्य सुनिश्चित.

पर बाहर राजनीतिक-आर्थिक-सामाजिक क्षेत्र में ऐतिहासिक बवंडर उठ रहे थे. प्रस्तर-स्तंभ चरमरा रहे थे, कलश गोपुरम हिल रहे थे. भारत का नया इतिहास लिखा जा रहा था अब की बार परिवर्तन दक्षिण भारत से शुरू हुआ और देखते-देखते एक ही सदी में सहस्त्रों वर्षों की संस्कृति लगभग धराशायी होने के संकट को झलने लगी थी.

विदेशी व्यापारी कंपनियों का भारतीय साम्राज्य :

सन १४९८ में पुर्तगाली वास्को डी गामा ने केरल के कालीकट में अपने देश की ओर से व्यापार की पहल की. बाद के वर्षों में भारत का लगभग समूचा पश्चिमी तट उनके हाथ आ गया. उनके साथ आये ईसाई मिशनरी भी जिन्होंने उन प्रदेशों की स्थानीय भाषाएं सीखीं, उनमें बाइबल की रचना की और जाति-प्रजाति के अनुल्लंघ्य दीवारों के बीच जकड़े स्थानीय जनों को ईसाई धर्म में आमंत्रित किया थोड़ा भौतिक प्रलोभन, थोड़ा आध्यात्मिक. और यही कहानी कलांतर में लगभग पूरे भारत में थोड़े-बहुत अंतर के साथ दुरहाई गयी. 'हिंदू धर्म' के बहुदेववाद, मूर्ति-पूजन, वर्ण-भेद, स्पृश्य-अस्पृश्य की अवधारणाओं की नींव में निहित शोषण, प्रताड़न, तर्कहीनता और उन्हें 'दैवी' विधान न मानकर, मानवीय शोषण-परंपरा के अनुमोदन के रूप में देखे जाने की शुरुआत भी इसी काल-खंड में हुई. १९वीं सदी के पूर्वार्ध से शुरू हुए समाज-सुधार, आंदोलनों के बीज भी तभी बोये गये. देवदासी-प्रथा को भी धर्म की आड़ में किये जाते मानवीय शोषण के रूप में देखे जाने और उसके उन्मूलन के लिए किये जाते प्रयासों का मुखर रूप लगभग १९वीं सदी के उत्तरार्ध में दिखा लेकिन विचार-परिवर्तन की शुरुआत इसी कालखंड के वातावरण में हो चुकी थी.

सन १६१२ में इंग्लिश ईस्ट इंडिया का प्रतिनिधि हिंदुस्तान आया. सन १६७२ के आस-पास फ्रेंच ईस्ट इंडिया कंपनी ने इस देश में व्यापार की शुरुआत की. यूरोप में इंग्लैंड और फ्रांस निरंतर प्रतिद्वंद्विता और प्रभुसत्ता की लड़ाई लड़ते आये थे, उसका प्रभाव हिंदुस्तान पर भी पड़ता रहा. दक्षिण-भारत में दोनों देशों की व्यापारिक-राजनीतिक जय-पराजय का निर्णायक खेल लगभग बीसवीं सदी तक चलता रहा. दक्षिण में फ्रेंच उपनिवेश के अंतर्गत, पांडिचेरी आता था, कालांतर में आज़ादी की लड़ाई के दौरान, विशेष रूप से सशस्त्र क्रांति के समर्थक राष्ट्रवादी ब्रिटिश क़ानून से बचने के लिए पांडिचेरी पलायन कर जाते थे. बंगाल के अरविंद घोष और तमिल भाषा के कालजयी कवि सुब्रह्मण्य भारती उन्हीं में से थे.

'मद्रास' की स्थापना और एक युगांतर :

ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने मद्रास शहर को बसाया और अपने व्यवसाय राजनीतिक-सामाजिक-गतिविधियों का केंद्र बनाया. दक्षिण-भारत के लगभग सभी राजे-रजवाड़े पराजित या ध्वस्त हो चुके थे; धर्म-संस्कृति का प्रश्रय देने की उनकी परंपरागत भूमिका नामशेष हो गयी थी; दक्षिण का एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक केंद्र — तंजावूर, उसकी मदुरै, उसका मीनाक्षी मंदिर उसके संरक्षण की छाया में सदियों से पल रहे, फल-फूल रहे कला-कर्मी मज़बूर हो

गये कि मद्रास शहर में आश्रय ढूंढ़े. वहां अब पाश्चात्य विधाओं में शिक्षित-अर्धशिक्षित, नौकरीपेक्षा मध्यवर्ग पूरे आत्मविश्वास के साथ संस्कृति-रक्षण का कार्य करने लगा था. शास्त्रीय कर्नाटक संगीत की सार्वजनिक बैठकें 'कच्चेरी' आयोजित होने लगीं. पुरस्कृत करने और बहिष्कृत करने के नये-नये मान-दंड बनने लगे.

इस बीच मद्रास में विशेष रूप से गायन के क्षेत्र में बहुत बड़ी तकनीकी क्रांति आयी — ग्रामोफोन रिकॉर्ड बनने लगे, रेडियो भी आया, सिनेमा भी और संगीत नाटकों की भी मांग बढ़ने लगी.

सुब्बुलक्ष्मी का सार्वजनिक संगीत-जगत से साक्षात्कार! :

षण्मुखवडिव अम्माल ने भी भविष्य को ध्यान में रखते हुए मदुरै से मद्रास जा बसने का निर्णय लिया. बेटी सुब्बुलक्ष्मी ने लगभग १०-११ वर्ष की उम्र में ही बड़ी सहजता के साथ सार्वजनिक सभा में शास्त्रीय कर्नाटक संगीत का कार्यक्रम प्रस्तुत किया था. मद्रास में भी उसने कला-मर्मज्ञों के सामने अपनी प्रतिभा का विकसित रुप दिखाया. लगभग १३ वर्ष की उम्र में एक ग्रामोफ़ोन कंपनी ने उसके गायन का पहला रिकॉर्ड भी प्रकाशित किया.

मां को अब सुनिश्चित हो गया कि उसकी उत्तराधिकारिणी तैयार हो चुकी है; सुब्बुलक्ष्मी पंद्रह वर्ष की हो चुकी थी और 'देवदासी' परिवार की परंपरा के अनुसार अब समय आ चुका था कि उसके लिए एक संपन्न प्रतिष्ठित 'संरक्षक' ढूंढ़कर उसका विवाह कर दिया जाये. वह मद्रास से सपरिवार मुदुरै लौट गयी.

उसके बाद क्या, हुआ, कैसे हुआ — यह कथा अब भी बहुत स्पष्ट नहीं है. कहा जाता है कि मद्रास आवास के दौरान ही श्री त्यागराज सदाशिवम से सुब्बुलक्ष्मी का इतना परिचय हो चुका था कि वह उन्हें एक विश्वसनीय मित्र, मानने लगी थी. एक रात को सुब्बुलक्ष्मी ने मदुरै के अपने घर में अपने पहने हुए गहने उतारकर रख दिये, रातों-रात रेल पकड़ी और मद्रास पहुंच गयी. वहां एक प्रतिष्ठित सज्जन के घर रिक्शा लेकर पहुंची तो वे बड़े धर्मसंकट में पड़ गये और फिर तुरंत उसे साथ लेकर टी. सदाशिवम् के घर पहुंचे, उन्हें स्थिति समझायी और सदाशिवम् ने सुब्बुलक्ष्मी को अपने यहां आश्रय देने का आश्वासन दिया, निभाया भी. उसके बावजूद कि वे विवाहित थे, दो बच्चियों के पिता थे और उन दिनों उनकी पत्नी मायके गयी हुई थी. पत्नी की मृत्यु के बाद सन १९४० को सदाशिवम् ने सुब्बुलक्ष्मी से विवाह किया यद्यपि तत्कालिन सामाजिक परंपरा के अनुसार यह आवश्यक नहीं था. दोनों में अनेक असमानताएं थीं — सदाशिवम् ब्राह्मण थे — सुब्बुलक्ष्मी छोटे वर्ण की देवदासी, सदाशिवम् की उम्र लगभग ४० की थी, सुब्बुलक्ष्मी की २० के आस-पास सदाशिवम् बहुत ही महत्वाकांक्षी ज़िद्दी, सामाजिक-राजनीतिक रिश्तों को भुनाने में माहिर, दाव-पेंच कर सकनेवाले कूटनीतिज्ञ ऐसा लगता था जैसे जल और तेल का संग हो; पर ऐसा होते हुए भी परिणाम इतने अभूतपूर्व रूप से सफल और सुखद निकले कि संभवत: संपूर्ण आधुनिक भारतीय कला-जगत में इस प्रकार से एक-दूसरे का पूरक युगल न पहले पाया गया न बाद में. सुब्बुलक्ष्मी-सदाशिवम् दंपति केवल एक ही बार अलग हुए जब सदाशिवम् की सन १९९७ में ९९ वर्ष की आयु में मृत्यु हुई. ५७ वर्ष का उन दोनों का साथ कर्नाटक संगीत ही नहीं भारतीय कला-संस्कृति के क्षेत्र के उच्च से उच्चतर सोपानों पर आरोहण का वर्ष ठहरा!

'एमएस' एक व्यक्ति नहीं एक मूर्तिमंत मूल्य परंपरा :

'एम. एस.' ने सिनेमा के क्षेत्र में उल्लेखनीय भूमिकाएं निभायी. एम. एस. कालांतर में एक विराट भव्य सांस्कृतिक सेतु बनेंगी जैसे उसके एक प्रारंभिक मॉडल के तौर पर उनकी 'सेवासदनम्' फ़िल्म की भूमिका को देखा जा सकता है. कथा-सम्राट प्रेमचंद की प्रथम महत्वपूर्ण रचना थी 'बाज़ारे हुस्न' (उर्दू) — सेवासदन (हिंदी) जिसका अनुवाद 'सेवासदनम्' शीर्षक से तमिल में धारावाहिक रूप से छपा था जिसका फिल्मीकरण किया गया. समाज-सुधारों का दौर था अनमेल विवाह के दुष्परिणामों को चित्रित करता है — 'सेवासदनम्' और सुब्बुलक्ष्मी ने उसमें नायिका सुमति की भूमिका निभायी थी. अन्य फ़िल्मों के अलावा उनकी एक उल्लेखनीय फ़िल्म थी — 'शकुंतलै' जिसमें उनकी गायन-कुशलता को भरपूर अवसर दिया गया था. 'मीरा'— तमिल

'कथाबिंब' का यह अंक आपको कैसा लगा कृपया अपनी प्रतिक्रिया हमें भेजें और साथ ही लेखकों को भी. हमें आपके पत्रों/मेल का बेसब्री से इंतज़ार रहता है.

- संपादक

ई-मेल : kathabimb@gmail.com

फ़िल्म सन १९४५ में बनी जिसे एलिस डंगन ने निर्देशित किया और उसी फिल्म का हिंदी रुपांतरण सन १९४७ में 'मीराबाई' के नाम से दर्शकों के समक्ष आया. 'मीराबाई' को राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान मिला, सराहना मिली; तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू, इंग्लिश वायसराय लॉर्ड माउंटबेटन आदि प्रतिष्ठित जनों ने उसे देखा और सबसे उल्लेखनीय बात यह कि स्वयं महात्मा गांधी ने उस फ़िल्म को देखकर सुब्बुलक्ष्मी की सराहना की.

एम. एस. ने फिर फ़िल्मों में काम नहीं किया और फिर राष्ट्रीय–अंतर्राष्टीय मंचों पर से कर्नाटक संगीत की प्रस्तुति की. एम. एस. तब तक दक्षिण में विशेषकर 'मद्रास' के 'एलीट' दायरों में एक प्रतिमान बन चुकी थीं. उनका मुखमंडल ही जैसे दैदीप्यमान लगता था. हल्दी की हल्की-सी झलक के बीच माथे पर लगी गहरे लालरंग की कुंकुम बिंदी, नाक में दोनों ओर झिलमिलाती दक्षिणी 'मूकुत्ती', कानों में दमकता पारंपरिक हीरक-भूषण घुंघराले बाल, जूड़े में बंधे हुए सुगंधित पुष्पों की वेणी, और दक्षिणी ब्राह्मणी स्त्री की शैली में पहनी हुई नौ गज़ की रेशमी साड़ी. गहरा नीला रंग उनका प्रिय रंग था सो अनेक साड़ियां उसी रंग की होती थीं- महिला वर्ग में 'एम एस ब्लू' एक लोकप्रिय रंग बन गया था.

भजन-कीर्तन को एम. एस. ने अपने गायन में महत्वपूर्ण स्थान दिया. भाषा-संप्रदाय का भेद न रखते हुए उन्होंने हिंदी, तमिल, तेलुगू, संस्कृत आदि में भजन कहे. उनके भजनों ने उन्हें कालजयी बना दिया.

'भारत' की गायिका 'रत्न', सुब्बुलक्ष्मी :

एम. एस. सुब्बुलक्ष्मी को सन १९९८ का 'भारत-रत्न' अलंकरण दिया गया. संभवत: एक मौन सिसकी निकल गयी होगी, एम. एस. के थरथराते होंठों से — क़ाश, सदाशिवम् साथ होते पर वे तो उसे अकेला छोड़कर सन १९९७ में विदा हो चुके थे.

११ दिसंबर, सन २००४ में चेन्नै में एम. एस. की मृत्यु हुई. वातावरण में एक ही स्वर ध्वनित-प्रतिध्वनित हो रहा था. श्रद्धेय कांची कामकोटि के परमाचार्य श्री चंद्रशेखरानंद सरस्वती द्वारा रचित 'मैत्रीं भजथ-मैत्री भजथ'. सन १९६६ में संयुक्त राष्ट्र महासंघ के एक समारोह में इसे गाया था. एम. एस. ने जो दशकों-सदियों तक विश्व-मैत्री, विश्व-शांति का आवाहन मंत्र बना रहेगा.

'मैत्रीं भजथ अखिल हृज्जेत्रीम्
आत्मवदेव परानपि पश्यत ।
युद्धं त्यजत स्पर्धाम् त्यजत
व्यजत परेषु अक्रमम् आक्रमणम् ।।
जननी पृथिवी कामदुघाऽऽस्ते
जनको देव: सकल दयालु:।
दाम्यत दत्त दयध्वं जनता:
श्रेयो भूयात् सकलजनानाम् ।।

६०१–ए, रामकुंज को. हॉ. सो.,
रा. के. वैद्य रोड, दादर (प.),
मुंबई- ४०००२८.
मो.:९८२०२२९५६५.
ई-मेल : rajampillai43@gmail.com

ग़ज़ल

अशोक 'अंजुम'

ख़रा गुमनाम खोटा चल रहा है,
अजब मौसम है क्या-क्या चल रहा है.

कभी पूछो भी कैसा चल रहा है,
सभी कहते हैं अच्छा चल रहा है.

नहीं है प्यार को थोड़ी जगह भी,
मगर हैरत है रिश्ता चल रहा है.

है बाज़ारों में जिस्मों की नुमाइश,
वहीं घर-बीच परदा चल रहा है.

कहीं ज़िंदा भी ग़ायब हो रहे हैं,
कहीं फ़ाइल में मुर्दा चल रहा है.

जो मेरी ज़ेब से फिसला था इक दिन,
सियासत में वो सिक्का चल रहा है.

गली- २, चंद्र विहार कॉलोनी,
(नगला डालचंद), क्वारसी बाईपास,
अलीगढ़- २०२००२
मो. : ९२५८७७९७४४

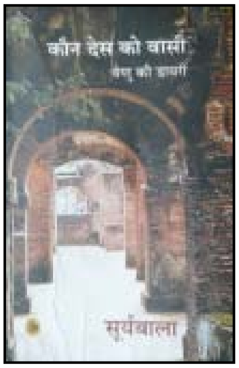

कौन देस को वासी : वेणु की डायरी (उपन्यास) **: डॉ. सूर्यबाला**
प्रकाशक : राजकमल प्रकाशक, दरियागंज,
दिल्ली - ११०००२ **मूल्य -** ३९९/-

अपने समय की नब्ज पकड़ने वाला एक अद्भुत उपन्यास

✍ डॉ. रमाकांत शर्मा

सूर्यबाला जी मूलत: कहानीकार हैं. मंजी हुई कथाकार सूर्यबाला जी की लगभग सभी कहानियां जीवन के विविध चित्रों को उकेरने और मानवीय संवेदनाओं को जगाने का काम करती रही हैं. संभवत: इसीलिए वे पाठकों के मन में सहज ही स्थान बना लेती हैं. पर, जब सत्य और कल्पना के माध्यम से व्यापक जीवन की झांकी प्रस्तुत करने की बात आती है तो कहानी का कलेवर छोटा पड़ जाता है. अर्नेस्ट ए. बेकर ने जीवन तथा समाज की व्याख्या के लिए उपन्यास को सर्वोत्तम विधा के रूप में निरूपित किया है. उपन्यास के जरिए मानव चरित्र का यथार्थ, विशद् एवं गहन अध्ययन किया जा सकता है, जो कहानी के छोटे से कलेवर में समोया नहीं जा सकता. इसीलिए जब-जब अपने आसपास की घटनाओं को सूर्यबाला जी ने व्यापक फलक पर देखने और उन्हें सामाजिक जीवन के साथ गूंथने के लिए क़लम उठायी है, तब-तब उपन्यास विधा का सहारा लिया है. उनके पिछले पांच और अब यह छठा उपन्यास 'कौन देस को वासी – वेणु की डायरी' इस बात का साक्षी है.

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के इस युग में पढ़ने की आदत कम से कम होती जा रही है. इतना बड़ा उपन्यास पढ़ने के लिए पाठक मिलेंगे या नहीं, इस बात की परवाह किये बिना सूर्यबाला जी ने अगर यह उपन्यास लिखा है तो इसके लिखने के पीछे कोई बड़ी वजह रही होगी. जब व्यष्टि अनुभव समष्टि अनुभवों के साथ एकाकार होते हैं तो 'अपने परिवेश को, अपने देश को और समाज को देखने के लिए एक नयी दृष्टि मिल जाती है.

लगभग हर मिडिल क्लास भारतीय का सपना होता है कि वह ख़ुद या फिर उसके बच्चे अमेरिका में उच्च शिक्षा प्राप्त करें और वहीं नौकरी करके डॉलर कमायें. वे हरे और करारे डॉलर जो सिर्फ़ उसका ही नहीं, पूरे परिवार का जीवन बदल दें, सारे दु:ख उड़न छू हो जायें और सुखों की ऐसी बरसात होने लगे, जिसे बटोरने के लिए झोली छोटी पड़ जाये. बस, अमेरिका का वीजा ही तो मिलना होता है और सुखों के सारे द्वार खुल जाने होते हैं. फिर, सपनों के देश में पहुंचने, सब कुछ पाने, अघाने के बाद भी जीवन के छूंछा नज़र आने के पीछे की वजह क्या है, मनुष्य की प्रगति और सभ्यताओं के चरम विकास की नियति क्या है, लालसावश अपनी धरती छोड़ने के बाद वह कब तक और कितनी छूट पाती है, अपने देश में रहते क्यों नहीं कर पाते हम उसे महिमामंडित तथा कहां और किस बिंदु पर मिलती हैं सुख-सुविधाओं, सच-झूठ, सफलता-असफलता की विभाजक रेखाएं जैसे प्रश्नों के उत्तर तलाशता यह उपन्यास पहले पृष्ठ से लेकर अंतिम पृष्ठ तक पाठक को बांधे रखता है. उपन्यास की लंबाई कहीं खो सी जाती है.

इस उपन्यास का शिल्प इस अर्थ में अनूठा है कि यह नौ खंडों और एक परिशिष्ट में बंटा होने पर भी उपन्यास के मुख्य विषय से जरा भी विरत नहीं होता, बल्कि उसे और भी शिद्दत से उभारता है. हर खंड के अपने छोटे-छोटे शीर्षक और उनके अंतर्गत संवाद किसी बड़ी नदी में छोटी-छोटी धाराओं के आप्लावन का आभास कराते हैं और परिशिष्ट तक आते-आते सभी नदियां उपन्यास की मुख्य विषय-वस्तु के समुद्र में समा जाती हैं.

वेणु जैसे किसी मेधावी बेटे का सपना जब हक़ीकत में बदलने लगता है तो पूरा घर सपनीली सतह पर तैरने लगता है. यह बात और है कि इस सपने को पूरा करने के लिए कितनी भी और कैसी भी बड़ी क़ीमत चुकानी पड़ रही हो, रुपयों-पैसों में या फिर भावनाओं में. पर, सब के 'दु:ख' 'ख़ुशी' में सराबोर नज़र आते हैं क्योंकि वेणु का

अमेरिका जाना सबके लिए संभावनाओं, आकांक्षाओं और उपलब्धियों का पर्याय, सुख-समृद्धि के महाकाव्य की प्रस्तावना और किसी विराट परियोजना के शिलान्यास जैसा जो है.

बिडंबना यह है कि अमेरिका में रहने-पढ़ने के लिए बच्चों को जो पापड़ बेलने पड़ते हैं, उन्हें वे सायास अपने परिवार से छुपाते हैं, इस डर से कि उनकी सपनीली आंखें पनीली न हों जायें. वेणु अपनी डायरी में लिखता है –'मैं तुम लोगों को अच्छी बातें ही बताता और तुम लोग उतने ही सच को हक़ीकत समझ लेते. बर्तन धोने, किचन की सफ़ाई करने, कचरा फेंकने के बाद फर्श पर गद्दा बिछा कर सोने और रोने वाले वेणु की कल्पना तुम नहीं कर सकती थीं न मां... 'विदेश में अपने घर की याद आती है तो स्वाभाविक रूप से वेणु के मुंह से निकल पड़ता है - 'सपने में परसी थालियां और गर्म रोटियां देखता हूं तब कुछ नहीं सुहाता – बस यही मन करता है कि आंखें मूंदूं, एक लंबी छलांग लगाऊं और अपने घर.'

परदेश में जब कोई अपने मतलब से जाता है तो उसे वहां का अनुशासन भी मानना होता है. अपने घरों में बेफिक्री से मस्त पड़े रहने वाले लोग जब किसी रेस्त्रां में जूठे बर्तन धोते हैं, वेटर का काम करते हैं, किसी लाइब्रेरी में स्टैकिंग का काम करते हैं, या फिर अपने देसीपन और उच्चारण के कारण बार-बार अपमानित होते हैं तो मुंह से अनायास निकल पड़ता है – 'ये दुनिया अगर मिल भी जाये तो क्या है...' सच तो यह है कि 'यहां आये सारे भारतीयों का रास्ता इन्हीं कॉफी-टेबलों पर सर्व करते हुए ही समृद्धि के शैंडोलियरों तक जाता है.'

समय के साथ-साथ अमेरिका की अजनबीयत और भय की जगह एक इत्मीनान आने लगता है. घर के लिए मन उतना नहीं लहकता जितना पहले लहकता था. फ़ोन पर घर से भी नम, बिसूरती आवाज़ें नहीं, खुली आशान्वित आवाज़ें आने लगती हैं. उनके अवसाद क्रमश: आह्लाद में बदल गये दिखते हैं. परदेश में कुछ दोस्त ही जब एक-दूसरे का सहारा बनने लगते हैं तो अनायास एक सर्वथा पृथक तरीक़े की शेयरिंग और भाईचारा पनपता जाता है.

अमेरिका में नौकरी लगते ही घर वालों के फ़ोन पर भावनाओं की गर्माहट की जगह हिसाब-किताब जगह लेता जाता है – सबकी आशाएं अपेक्षाएं बढ़ती जाती हैं, घर में कार जैसी विलासिता की तो बहन की शादी में अमेरिकी भाई से बड़े दहेज की. अमेरिका में रहने वाला बेटा, भाई उन्हें तो गर्व का कारण दे सकता है, पर वेणु ने ख़ुद क्या पाया –'हर शाम तो एक प्याले गरम चाय, पकौड़ी और खाने में गरम फूली रोटियों के लिए तरसता रहा.' उसे महसूस होने लगता है कि वह मात्र एक कुशाग्र छात्र से स्टेटस सिंबल बनता जा रहा है. घर लौटने पर अपने ही घर में वी. आई. पी. सा अलग-थलग महसूसना. पापा और अपने बीच सर्वथा नया, सर्वथा अनिर्वचनीय अनायास जुड़ आया अनूठा रिश्ता. जैसे एक प्रतिस्पर्धा-सी चल रही हो दोनों के भीतर, एक दूसरे को ज़्यादा से ज़्यादा दे पाने की – स्नेह, सम्मान, निश्चिंतता और हल्कापन.' लोगों के आने का सिलसिला, सभी की आंखों में प्रशंसा और सम्मान का भाव. मन सोचने लगता है –'यह स्पेशल ट्रीटमेंट क्यों? हमें भी नॉर्मली क्यों नहीं लिया जाता?'

सिर्फ़ अमेरिका में नौकरी करने के कारण 'शक्तिमान वेणु' सबके आकर्षण और सम्मान का केंद्र बन जाता है. उसके लिए रिश्ते आने की धूम मच जाती है. हैसियतदार परिवार की बेटी मेधा से उसकी शादी भी हो जाती है. वह याचक से दाता बन जाता है और उसे ख़ुद भी लगने लगता है कि वह इन सारे लोगों से बड़ा न सही, अलग तो हो ही गया है. जो सपना भी नहीं था, वह यथार्थ होता चला गया. उसका मन उस देश को सजदा करने का हो आता है, जिसने उसे यह हैसियत बख़्शी है. 'कहीं तुम बदल तो नहीं गये वेणु शुक्ला?'

अमेरिकी पतियों से शादी करने वाली लड़कियों की मानसिकता इस वार्तालाप में शिद्दत से झलकती है –'तुम मेरे बारे में जानने से कहीं ज़्यादा अमेरिका के बारे में जानना चाह रही हो मेधा. जैसे मेरे साथ नहीं, अमेरिका के साथ शादी की हो. ...लगता है, हम तीनों के दरमियान एक त्रिकोण बनने वाला है –'आइ लव यू, एंड यू लव अमेरिका' किस्म का.'

अमेरिका की रंगीन ज़िंदगी में रमती मेधा का सोचना था -–'अपने से बेहतर चीज़ की चाहना कुछ बुरी तो नहीं...' घरवालों से बढ़ती दूरियों को वेणु तब भी नहीं समझ पाया था जब मेधा ने कहा था — 'ओह हो, रहते तो थे साथ-साथ इंडिया में — क्या भुना लेते थे? एक की हज़ार खिचखिच.... यहां सिर्फ़ साथ ही तो नहीं रह रहे हैं बस.... वह यह बात तब भी महसूस नहीं कर पाया था जब

मां का फ़ोन कानों से लगाये वह अबूझ-सा मां की हिचकियां सुन रहा था और अपने कंधे से हिलकी खड़ी मेधा की पीठ भी सहलाता जा रहा था. मां की हिचकियां उसे इतनी बेगानी कभी नहीं लगी थीं.

वेणु के माता-पिता का अमेरिका आना और वहां की स्थितियों का आकलन उपन्यास के इन कुछ अंशों / संवादों से बख़ूबी किया जा सकता है —

-'प्रॉब्लम मुझे भी नहीं है बेटे, हम प्रॉब्लम बनने नहीं, तुम्हें कुछ सहूलियत दे पाने आये हैं.'

-पिता को जरा ज़्यादा कोशिश करनी होगी... जोर-जोर से ठठा कर न हंसना, न ऊंची आवाज़ में बुलाना... बेटू (वेणु के बेटे) को हंसाना, खिझाना, उछालना... किसी के आने पर चुपचाप उठ जाना...

- 'तो बस आप मेरे और वेणु के ऑफ़िस जाने के बाद बेटू की बेबी सिटिंग... उसकी मालिश, बाथ, टब, दूध की बोतलें बॉइल करना... बेबी फूड, वग़ैरह... बाक़ी घर के सारे काम तो ऑटोमेटिक मशीनों से होते हैं... हां, पापा के मन के खाने में ज़रूर ज़्यादा मेहनत पड़ती है. तो उनके टेस्ट चेंज का जिम्मा भी आपका... उनसे कहिए वे पुरानी दकियानूसी आदतें अब छोड़ें बस...'

- वेणु सोचता है — अच्छा है, मां-पापा यहां बेटू की कंपनी में बहुत ख़ुश हैं. मां चेहरे से कोई शिकायत या ऊब कहां दर्शाती है? मेधा सोचती है — इन लोगों ने इतना सुंदर घर, शहर कहां देखा होगा. मगन तो होंगे ही. सूती बॉर्डर वाली साड़ियों और चप्पलों से काम चलानेवाली मम्मी जी के तो यहां सलवार कुर्ते पर वुलन ज़ैकेट, गले में स्कॉर्फ और मोजों जूतों वाले ठाठ ही हुए न...

— 'पेरेंट्स चले गये न तुम्हारे? मिस कर रहे होगे? ...सुनो वेणु, तुम्हारी प्रेयॉरिटी मैं हूं या तुम्हारे पेरेंट्स?'

— 'मेरे माता-पिता और परिवार तुम्हारे नहीं?'

— 'तुम रिडिक्यूलस हो रहे हो... मेरे लिए अजनबी ये तुम्हारे माता-पिता... ननदें-सगे माता-पिता, बहनें कैसे हुए? ये तुम्हारी मौसी, चाची, बुआ–हंसो बोलो इनसे, इनका ख़्याल रखो. इन्होंने वेणु को उछाला, घुमाया, दूध-भात खिलाया... तो मान लिया ये सारा कुनबा तुम्हारा हुआ. लेकिन, मेरा कैसे भई?'

इस अति-भौतिकवादी देश में रिश्तों की कोई क़ीमत

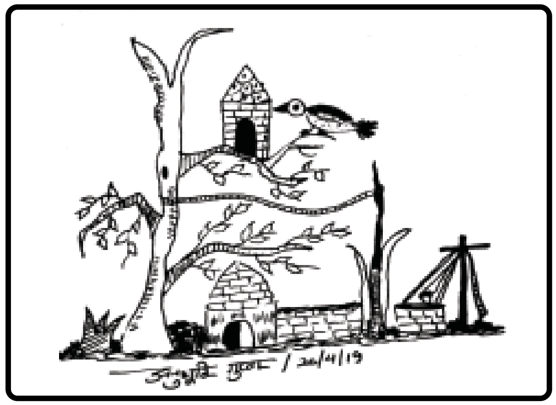

नज़र नहीं आती. यहां तृष्णा कभी शांत नहीं होती. भारतीय दूसरों की समृद्धि से ख़ुद को कंपेयर करते हैं और वह सब पाने के लिए ख़ुद को झोंक देते हैं.

रिश्ते बोझ बनते ज़रूर दिखते हैं, पर इसका एक दूसरा पहलू भी तो है जो मां के इन शब्दों में प्रकट होता है –'हमने वेणु को अपनी इतनी ज़रूरी एक मात्र शरणस्थली क्यों बना ली है — उसी से सुख, उसी से सुकून और तृप्ति पाने की आदत — एक स्वप्न, एक हीरामन की तरह पाले रहे उसे बरसों बरस... बोझ कैसे भी हों थकाते तो हैं ही. उतारो यह माया-ममता का बोझ... भूल जाते हैं कि वेणु की प्राथमिकताएं बदलेंगी नहीं क्या? यह पिंजरा उसके लिए छोटा नहीं पड़ रहा होगा क्या? इसलिए लो, मुक्त करती हूं मैं तुम्हें वेणु... आदत पड़ जायेगी धीरे-धीरे.'

'लौटे हुए हम' उपशीर्षक में मां का यह कहना कि वेणु ने उन्हें अपने समृद्धि का सम्राज्य दिखाने के लिए नहीं, बल्कि अपने साथ होने के लिए, वह पहले वाले कुटुंब भाव से जीने के लिए बुलाया था, और फिर यह कि — 'तू हमेशा ही ज़रूरत से अधिक सहारा बना रहा... लेकिन अब मेधा के भी तो शौक़ हैं, आदतें हैं, ख़र्चे हैं, प्राथमिकताएं हैं — ग़लत नहीं कह सकते हम उसे अपनी जगह, 'मां की सहृदयता को सामने लाता है तो कहीं न कहीं विचारों के अंतर्द्वन्द्व को भी उजागर करता है. उपशीर्षक 'हलो दादा, हलो भाभी' के अंतर्गत वेणु की बहन बसु और मेधा के बीच का वार्तालाप इस उपन्यास को बुलंदी पर ले जाता है.

मेधा के फिर से प्रिगनेंट होने पर मां-बाप का वापस अमेरिका लौटना और उनका यह सोचना कि आख़िर क्यों आ गये हम यहां फिर, उनकी मनोदशा को ख़ुद-ब-ख़ुद

व्यक्त कर देता है. उन्हें नहीं पता था कि इस बीच अमेरिका की मंदी की वजह से जाती हुई नौकरियों की आशंका से कितने असुरक्षित, लाचार, लज्जित होंगे बच्चे अपने माता-पिता के सामने. मेधा हमेशा की तरह अपने अमेरिका के साथ व्यस्त है, पर उसकी तुर्शी में उसका आहत अभिमान साफ़ बोलता नज़र आता है. 'कुछ दुःख कहने-सुनने के लिए होते हैं, कुछ चुप से गटक जाने के लिए... और कुछ इतने धीमे-धीमे कि आसपास किसी को भनक तक न लगे. 'प्रभाकर (पापा) अब बड़े हो गये. पहले कितना बोलते थे. अब किसी बात पर कुछ नहीं बोलते' — वाक्य अपने आपमें बहुत कुछ बोल जाता है.

अमेरिका की मंदी की स्थिति के बहाने लेखिका ने इस बात को रेखांकित किया है कि विश्व भर में फैली अशांति के पीछे हथियारों की बिक्री की नीति के लिए अमेरिकी व्यावसायिक-नीति ज़िम्मेदार है — 'इस देश का सबसे प्रॉफ़िटेबल उद्योग तो युद्ध है. इतने बड़े पैमानों पर लड़े जाते युद्धों के लिए दुनिया भर को हथियारों की सप्लाई ऐसे ही तो नहीं हो जाती... युद्ध लड़े ज़रूर जायेंगे क्योंकि युद्ध होना या न होना अमेरिकी शासन नहीं, हथियार बनाने वाली कंपनियों की लॉबी तय करती है.'

वेणु कहता है — 'मेधा लौट चलें क्या हम भी', लेकिन कह कर ख़ुद की नज़रों में ही बौना हो जाता है. मेधा कहती है — 'वेणु जल्दी हार मान लेते हो तुम... थोड़ी–सी फ़ाइटिंग स्पिरिट तो होनी चाहिए मर्द आदमी में... यहां से लौटने पर तुम्हारा सामना पहले उन्हीं लोगों से होगा. अच्छा है, उन लोगों की दृष्टि में जो तुम हो वही बने रहो.' वेणु सोचता है — 'शायद मेधा ठीक कह रही है. इस मंदी में भी यहां कम से कम साफ़-सुथरा पहना-खाना खाया जा सकता है. कुल मिला कर एक जीने लायक ज़िंदगी. लेकिन, जाने क्यों लगता है कि ख़ुशहाल ज़िंदगी की यह परिभाषा अधूरी है...? आत्महत्याएं यहां भी होती हैं, हताशा ऊब और सबसे बढ़कर अकेलेपन का अभिशाप... वहां भूख से मरते लोग हैं तो यहां खाने, अघाने के बाद भी अकेलापन और असुरक्षा और नींद की गोलियां खाकर मरते लोग.'

माता-पिता के चले जाने के बाद यह सवाल वेणु को मथता है कि क्या वह अब उस मुकाम पर पहुंच चुका है जहां मां-बाप और सारे रिश्ते सिर्फ़ नास्टेल्ज़िया में ही अच्छे लगते हैं. वह समझ नहीं पाता कि उनके जाने के बाद उसे छुटकारे की राहत का अहसास क्यों हो रहा है. वह ख़ुद को समझाता है कि वह अपने माता-पिता से बहुत प्यार करता है, पर जब वह मेधा के साथ खुल कर हंसता है तो स्वयं को यह सोचने से नहीं रोक पाता कि मां-बाप की उपस्थिति में वे ऐसे हंस पाते थे क्या..?

वेणु मां को अमेरिका में अपनी एक मेडिकल चेन की फ्रेंचाइजी खोलने की और उसमें व्यस्त रहने की सूचना देता है और कहता है अच्छा ही हुआ न, वरना सॉफ़्टवेयर का तमगा चिपकाए ज़ॉब वैकेंसी खोजता रहता. उसे इस बात का अहसास है कि उसके परिवार के लिए उसकी सॉफ़्टवेयर की जो डिग्री गर्व का कारण थी, उससे बाहर आना घरवालों के लिए शॉकिंग होगा, इसीलिए वह यह कहना नहीं भूलता — 'सोचो तो काम, काम सब एकसे.'

वह अपने नये आलीशान घर, सिल्वर-ग्रे ऑडी कार, बेसमेंट में होमथियेटर जैसी उपलब्धियों का भी बख़ान करता है. वह कहता है — 'सच कहूं तो रहते-रहते यह देश मुझे भी रास आने लगा है... यहां हर कोई अपने तरीक़े से जी सकता है... भारत में तो अकेले हो ही नहीं सकते... लोग अपना दुःख-सुख भी अपनी तरह महसूस नहीं कर पाते. चारों तरफ़, व्यक्तिगत जीवन में भी झांकते, लोग ही लोग. यहां के लोग अपने बच्चों के पास नहीं रहते... उन्हें उनका जीवन बेरोकटोक जीने देते हैं.

पिता के अंतिम संस्कार में वेणु का न पहुंच पाना, हमारे आसपास, घरों में, मोहल्लों में, रिश्तेदारी में घटे ऐसे कितने ही प्रसंगों की याद दिला देता है. बाद में उसका पहुंचना, मां की गोद में सिर रख कर रोना, वसु के ससुराल पहुंचने पर भाई को देखते ही बिलख कर दौड़ पड़ना ऐसे प्रसंग हैं जो मन को छू जाते हैं. पर, अपना ही घर वेणु को अपना-सा नहीं लगता, कुछ ही दिनों में मेधा ही नहीं, वह भी उकता जाता है. बेटू कहता है — 'आय एम सिक ऑफ़ इंडिया.' वह अपने घर और अपने देश चलने के लिए ज़िद करने लगता है. वेणु का थप्पड़ भी उसे नहीं समझा पाता कि भारत उसका अपना देश है. मेधा कहती है — 'इंडिया आकर तुम भी एकदम यहां के लोगों जैसा विहेव करने लगे हो, वेणु! उसी तरह मारने-पीटने भी. अगर तुम सोचते हो कि ऐसा करके तुम बेटू की इंडिया के प्रति धारणा बदल दोगे तो यह तुम्हारी भूल है.'

मां वेणु के साथ अमेरिका चलने के लिए इसलिए

तैयार नहीं होती क्योंकि उसके लिए यह घर ही सब कुछ है — 'मैं छोड़ भी जाऊं तो यह घर मेरा साथ छोड़ने वाला नहीं है... दीवारें बेजान नहीं हैं... देहरी तेरे पिता के आने की आहट देती है, पुरानी आहटों का हर क्षण आना-जाना लगा रहता है. साथ बना रहता है... यह घर हमेशा गुलजार रहता है स्मृतियों में.'

अमेरिका में पले-बढ़े बच्चों से बड़ों के पैर छूने जैसी भारतीय संस्कृति अपनाने की आशा नहीं की जा सकती. फिर, जिन रिश्तों को सिर्फ़ नाम से पहचाना जाता हो उनके साथ आत्मीयता और संवाद कैसा? भाषा की दीवार भी तो होती है उनके बीच, जो संवाद को पनपने का मौका नहीं देती. मां कहती है — 'हम किस भाषा में बात करें? क्या यह सिर्फ़ जेनेरेशन गैप है? बेटू तो फ़ेमिली के नाम पर सिर्फ़ मां, डैड और बहन साशा को जानता है... बाक़ी के लोगों के साथ वह दूरियां नाप सकता है, नज़दीकियां नहीं...'

उपन्यास का परिशिष्ट जहां पाने और खोते जाने की तथा वर्तमान को बहुत पा लेने और भविष्य को बहुत सहेज लेने के बाद – सब पाया, समेटा एक साथ छितरा देने और उससे मुक्त होने की बात करता है, वहीं वेणु की कही इस बात पर सोचता रह जाता है – 'हां, मां, सोचो तो सब धरती एक-सी है — आकाश और सितारे भी...तब हम यूनियन ज़ैक फहरा रहे हों या फिर तिरंगा, क्या फ़र्क पड़ता है?

अमेरिका की स्वछंद संस्कृति तब सामने आती है जब बेटू अपने मां-पापा से कहता है कि वे उसे वयस्क नहीं होने दे रहे और उसे घर में प्राइवेसी नहीं मिलती. उसकी तीसरी डेटिंग का पता चलने पर मेधा भी बौखला उठती है. बेटू का घर छोड़कर चले जाना, अपनी गर्लफ्रेंड के साथ रहना, कन्सर्ट के लिए साशा को उसके बैंडग्रुप के सिमॉन का पिक करने आना, अपनी समस्याओं के लिए मां-बाप के पास नहीं बल्कि प्रोफ़ेशनल काउंसलर के पास जाने की बात करना, नैतिक-अनैतिकता के खांचों में चीज़ों का फ़िट न हो पाना, सरवाइवल ऑफ़ दि फ़िटेस्ट की थ्योरी को एक बार फिर प्रमाणित करने में लग जाना, ये सब मेधा और वेणु को रह-रह कर भारत और भारतीयता की याद दिलाते हैं.

लालसा के चक्रवात में फंसे अपनी धरती अपने देश छोड़ने के लिए आकुल भारतीयों का और अमेरिका में बस जाने वाले इंडियनों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करता यह उपन्यास अपने युग की उन सच्चाइयों को नंगा करता चलता है, जिसे समझते तो सब हैं, फिर भी उन्हें अनदेखा करते हैं. आख़िर क्यों एक ऐसी मृगमरीचिका के पीछे भागने और उसे पाने के लिए हम अपना सब कुछ दांव पर लगाने से नहीं हिचकते जो मिलती है, फिर भी नहीं मिलती. फिर वही प्रश्न मुंह बाये खड़ा हो जाता है –सब कुछ पाने, अघाने के बाद भी जीवन छूंछा क्यों नज़र आने लगता है? गुरुवाणी के शब्द मन में अनायास कौंध जाते हैं — रहमतों की कमी नहीं है मालिक के खजाने में, झांकना ख़ुद की झोली में है कि कहीं कोई सुराख तो नहीं.

यह कोई साधारण उपन्यास नहीं है. यह हमें ख़ुद को, अपने परिवेश को, अपनी लालसाओं को, अपने सुखों और दु:खों को, सच-झूठ को, अपने अंतर्द्वन्द्वों तथा दो देशों की संस्कृतियों को समझने, उन पर विचार करने और ख़ुद को टटोलने के लिए बाध्य करता है. विषय वस्तु के अलावा अपनी सशक्त भाषा-शैली के कारण यह उपन्यास आदर्श तो प्रस्तुत करता ही है, पाठकों तक एक गंभीर विषय को बहुत रोचक तरीक़े से पहुंचाने में भी सफल होता है. इस बेमिसाल, विचारोत्तेजक और अपने समय की नब्ज़ पकड़ने वाले उपन्यास के लिए डॉ. सूर्यबाला जी को ढेर सारी बधाइयां.

४०२-श्रीरामनिवास,
टट्टा निवासी हॉ. सो., पेस्तम सागर रोड नं. ३,
चेंबूर, मुंबई -४०००८९
मो. :९८३३४४३२७४

हम सब की कहानी

राजीव पुंडीर

छंटते हुए चावल (क.संग्रह), **नीतू सुदीप्ति 'नित्या'**,
प्रकाशन : शब्द प्रकाशन, **मूल्य :** १४० रुपये.

नीतू सुदीप्ति 'नित्या' का दूसरा कथा संग्रह आया है 'छंटते हुए चावल'. इस संग्रह में चौदह कहानियां हैं.

सभी कहानियां निम्न या फिर निम्न मध्यवर्गीय परिवारों की कहानियां हैं जो ग्रामीण अंचल से ली गयी हैं, कहानियों की भाषा साधारण परंतु सुंदर है और प्रवाह एक नदी की तरह है जो कलकल करते हुए अपने गंतव्य की तरफ़

अविरल बढ़ती है. मित्रों, ऐसी कहानी वही लिख सकता है जिसने उस तरह के जीवन को न सिर्फ़ जिया हो बल्कि घूंट-घूंट पिया भी हो.

पहली कहानी 'छंटते हुए चावल' मेरे लिए मुहावरा ही है जिसका सही अर्थ मुझे कहानी पढ़ने के बाद ही ज्ञात हुआ. किसी व्यक्ति के बारे में बिना ठीक से जाने ही लोग क्या-क्या बोलने लगते हैं, यह कहानी का सार है. इस कहानी की एक पंक्ति ने मुस्कराने के लिए मज़बूर कर दिया, 'रोटियां सिकती गयीं, दिमाग़ पकता गया'. कहानी 'खोइंछा' भी कुछ-कुछ वैसे ही विषय पर आधारित है. जिसमें एक स्त्री को बिना उसका पक्ष जाने ही उसकी बेटी की मृत्यु का दोषी मान लिया जाता है. 'शीतल छांव' में इशिता और नरेन से मुलाकात होती है, जिनकी ज़िंदगी में लाखों ग़म हैं. समाज के कुछ महा स्वार्थी नियम किस प्रकार एक लड़की के जीवन से खेलते हैं कहानी पढ़ने योग्य है, जो अंत में आंखें नम कर देती हैं.

एक कामवाली बिमली जो कहती है — 'का करूं दीदी, हमार छत तो हमार मरद ही है न, तुम्हारे समाज में औरत लोग जल्दी से तलाक ले लेती हैं, पर हम ग़रीब औरत पति के लात-जूता खाके बस सहती हैं. फिर क्या हुआ? इसके लिए कहानी 'बिछावन' पढ़नी होगी. इसे श्रेष्ठ कहानी का पुरस्कार भी मिला है.

एक बलात्कार का शिकार हुई लड़की से लेखिका आपको 'कला अध्याय' में रू-ब-रू करवाती हैं. उसकी मन की स्थिति जो खंडित हो चुकी है, उसको अपनी शादी के समय कुछ ऐसा करने पर मज़बूर कर देती है, जिसको पढ़कर पाठक चकित रह जाता है.

'हम बोझ नहीं' एक प्रेरणादायक कहानी है जो हर हाल में जीवन जीने और संघर्ष करने की कहानी है. 'डे-नाईट' मुंबई-गुजरात की चालों में रहने वाली एक नववधु की कहानी है. जो एक ही रूम में ससुराल के बाक़ी सदस्यों के साथ रहने के लिए मज़बूर है. उसका पति भी शर्म के मारे मां-बहनों के सामने पत्नी के पास खुल नहीं पाता और अंत में दूसरी राह निकालता है.

'आस भरा इंतज़ार' एक ग़रीब मज़दूर के परिवार की कहानी है. जहां एक स्त्री कितना मज़बूर हो जाती है कि वह नये साल पर अपने बच्चों को खीर तक नहीं खिला सकती. 'खुल गयी आंखें' में ऐंद्री के व्यक्तित्व के बारे में जान कर अच्छा लगता है. 'माफ़ करना' एक प्रेम कहानी है. 'एक कथा ऐसी भी' में उदासी शुरू से पाठक पर हावी रहती है. मगर धीरे-धीरे कहानी आगे बढ़ती है तो अच्छी लगने लगती है. मां न बनने का दर्द क्या होता है ये 'रिश्तों का ताना-बाना' में पढ़ा जा सकता है. कैसे एक पुरुष के कारण कहानी सुखद बन पड़ी है.

कभी-कभी इंसान ऐसी विकट स्थिति में पड़ जाता है कि कोई रास्ता नहीं मिल पाता और गांधी जी के तीन बंदर की तरह आंखें बंद करनी पड़ती हैं. एक बेहद दिलचस्प कहानी 'बंद आंखों का बंदर है , चौदहवीं कहानी है 'चीरहरण' जिसमें एक लड़की और उसकी मां को अपने मासिक धर्म से निपटने के लिए क्या-क्या करना पड़ता है. जब ख़ुद उनके परिवार के लोग उनकी परेशानी को समझने के लिए तैयार नहीं हैं, बढ़िया प्रस्तुति है. हमारे समाज में प्रचलित कुप्रथाओं को विषमताओं और कुंठाओं को परत-दर-परत उघाड़ती ये साधारण भाषा में कहा गयीं आपकी, मेरी और हम सबकी कहानियां हैं.

चौहद कहानी के अलावा इसमें लेखिका की आत्मरचना भी है, 'लेखन मेरे जीने का साधन' इसमें लेखिका के संघर्ष और उसकी लाइलाज़ बीमारी की पूरी गाथा लिखी गयी है. जो दिल को छू जाती है. कहानियों में कोई ख़ास कमी नहीं है मगर भाषा को अभी और परिष्कृत करने की आवश्यकता है.

अपने उपनाम 'नित्या' को चरितार्थ करते हुए नीतू ख़ूब लिखे और धारदार लिखे.

ए-१, लाजपतनगर,
नयी दिल्ली-११००२४
मो. : ९८११३९०७६५

डीटीपी के लिए संपर्क करें

समाचार पत्र, पुस्तकों व पत्रिकाओं, इनव्हिटेशन कार्ड, विजिटिंग कार्ड के डीटीपी, ले-ऑउट और डिझाइन के लिए संपर्क करें.

सुगी आर्ट्स

३०२, वडाला उद्योग भवन, वडाला, मुंबई-४०० ०३१.
मो.नं.: ९८३३५४०४९०/९८९२८३११४६

साथ बढ़ें समृद्धी की ओर

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

पृथ्वी का अधिक पोषण
भारत की अधिक समृद्धि

छटें दशक में अपनी शुरुवात से ही आरसीएफ भारत की कृषि उत्पादकता को बढानेवाली एक प्रमुख शक्ति रही है। हमारी कामयाबी की जड़ें हमारे विश्वास में हैं, हमारा विश्वास है कि कृषक समुदाय की अधिकारिता ही सम्मलित विकास की ओर अग्रेसर करती है। लम्बे समय से हम भारतीय किसानों के सच्चे और विश्वसनीय हमसफर रहे हैं। निरंतर कृषि के माध्यम से निरंतर आत्मनिर्भरता आज राष्ट्र की जरुरत है और हम गुणवत्तापूर्ण कृषि इनपुट और प्रभावी कृषि सेवा किसानों को प्रदान करके मिट्टी की उचित देखरेख के साथ खेतों की उच्च उत्पादकता सुनिश्चित कर रहे हैं।

हमारे प्रेरणादायी निष्पादन :

- देश के अग्रणीय उर्वरक निर्माता।
- पिछले पाँच दशकों से भारतीय किसानों को समर्पित सेवाएँ।
- उर्वरक क्षेत्र में पहली पाँच कंपनीयों में स्थान।
- 'उज्ज्वला' यूरिया, संयुक्त श्रेणी 'सुफला' (15:15:15 और 20:20:0) पानी में घुलनशील उर्वरक 'सुजला', जैविक उर्वरक 'बायोला' सूक्ष्म पोषक तत्वोंवाला 'माइक्रोला' जैसे कई उत्पाद।
- रासायनिक क्षेत्र में अग्रणी, 20 औद्योगिक रसायनों का उत्पादन।

भविष्य की राह :

- 1.27 मिलियन टन प्रति वर्ष यूरिया बनाने के लिए विस्तारित परियोजना।
- सीआइएल, गेल और एफसीआइएल के साथ मिलकर कोल गैसिफिकेशन के माध्यम से तालचर में उर्वरक संकुल स्थापित करना।
- मध्य पूर्वी संसाधन समृद्ध देशों में यूरिया के लिए संयुक्त उद्यम नरियोजनाएँ स्थापित करना।
- रॉक फास्फेट और पोटाश के लिए लम्बी अवधि का ऑफटेक करार करना।
- निरंतर विकास पर सशक्त रुप से ध्यान केंद्रित करना।

राष्ट्रीय केमिकल्स एण्ड फर्टिलाइजर्स लिमिटेड
(भारत सरकार का उपक्रम)

"प्रियदर्शिनी", इस्टर्न एक्सप्रेस हाईवे, सायन, मुंबई - **400 022**. | www.rcfltd.com

आर. एन. आई. पंजीकरण संख्या :३५७६४/ ७९

संपर्क सूत्र : ए-१०, बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई-४०० ०८८

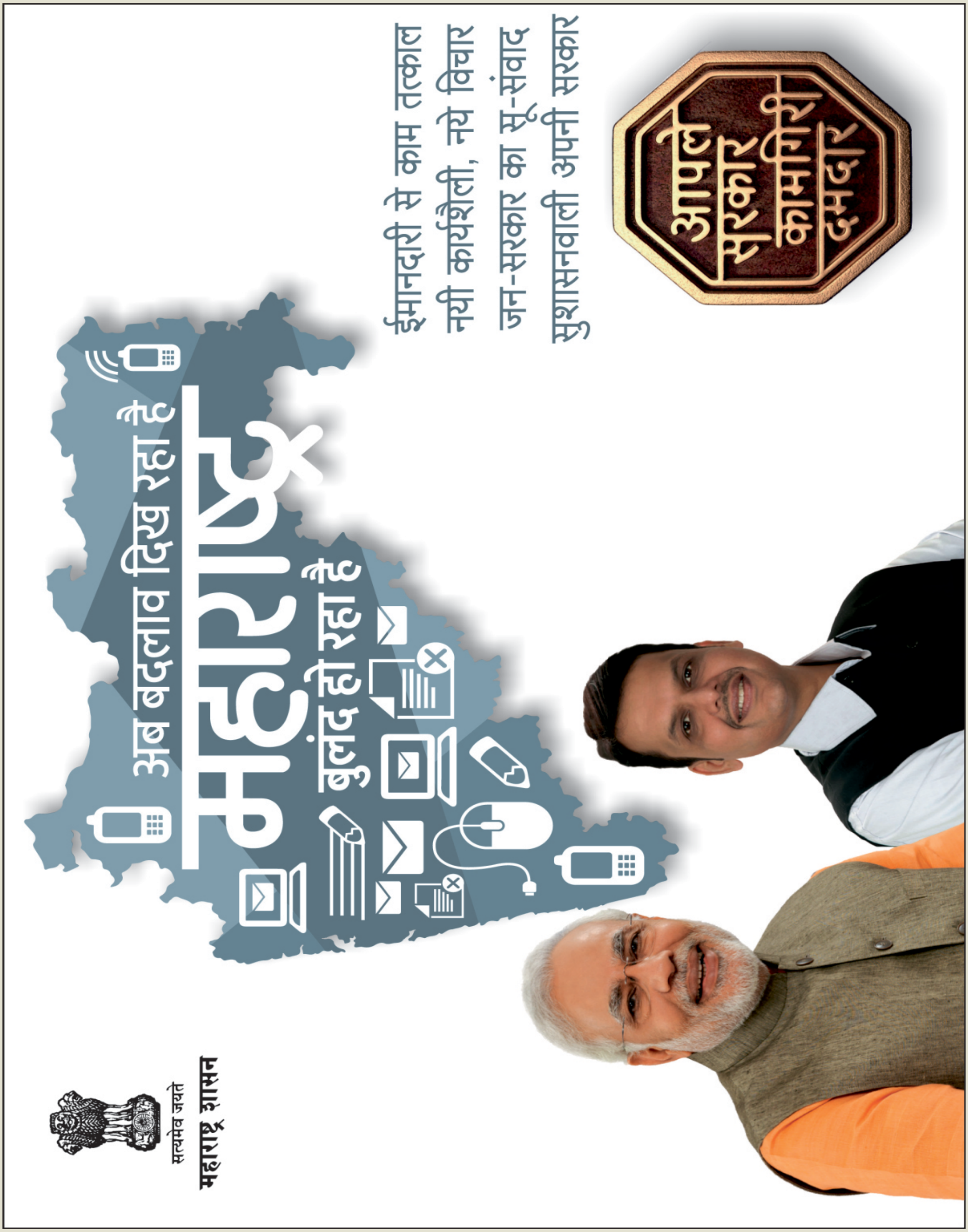

मंजुश्री द्वारा संपादित व पिकॉक प्रिंट्स, बिल्डिंग नं.-1 के पीछे, अंबेडकर सर्किल, पंतनगर, घाटकोपर, मुंबई-400 075 में मुद्रित.
टाईप सेटर्स : वन अप प्रिंटर्स, 12वां रास्ता, द्वारका कुंज, चेंबूर, मुंबई-400 071. फोन : 25515541